पढ़ें और सीखें योजना

वनस्पति

कार्बनिक पदार्थों की अनूठी प्रयोगशाला

चंद्रशेखर पांडे

विभागीय सहयोग
राम दुलार शुक्ल



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अप्रैल 2003
चैत्र 1925

ISBN 81-7450-048-0

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप
नई दिल्ली 110016	बैंगलूर 560085	अहमदाबाद 380014	पनिहटी, कोलकाता 700114

प्रकाशन सहयोग

संपादन : मीरा कांत
उत्पादन : डी. साई प्रसाद
सुबोध श्रीवास्तव

आवरण और सज्जा
कल्याण बैनर्जी

रु. 70.00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली - 110016 द्वारा प्रकाशित तथा लिपि, 1810/4, ग्यानी बाज़ार, कोटला मुबारकपुर, नई दिल्ली 110003 द्वारा लेज़र टाइप सैट होकर जे.जे. ऑफसेट प्रिंटर्स, 7, वज़ीरपुर प्रिंटिंग प्रेस एरिया, रिंग रोड, वज़ीरपुर, दिल्ली 110035 द्वारा मुद्रित।



प्राक्कथन

विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले तीन दशकों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगत होता है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि प्रायः स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी परीक्षा-प्रणाली है, जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में विद्यार्थियों को कोर्स से बाहर की पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त संख्या में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है परंतु वह बहुत ही अपर्याप्त है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के रूप में लेखन की दिशा में एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत *पढ़ें और सीखें* शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार की जा रही है जिसमें विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जा रही हैं। परिषद् इस शीर्षक के अंतर्गत ही शिशुओं के लिए पुस्तकें, कथा-साहित्य, जीवनियां, देश-विदेश परिचय तथा सांस्कृतिक, सामाजिक विज्ञान व वैज्ञानिक विषयों में अनेकानेक पुस्तकें निर्मित करती आ रही है। हम आशा करते हैं कि बहुत शीघ्र ही हिंदी में हम वैज्ञानिक विषयों पर 50 से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

वैज्ञानिक पुस्तकों के निर्माण में हम देश के जाने-माने वैज्ञानिकों एवं अनुभवी व सुयोग्य प्राध्यापकों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुंच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्यों की भांति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक *वनस्पति : कार्बनिक पदार्थों की अनूठी प्रयोगशाला* के लेखन के लिए डॉ. चंद्रशेखर पांडे ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया, जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है, उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

पढ़ें और सीखें पुस्तकमाला की इस योजना में विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्गदर्शन, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति और राजस्थान विश्वविद्यालय के वर्तमान प्रोफेसर-एमेरिटस प्रो. रामचरण मेहरोत्रा कर रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन के संयोजन और अंतिम संपादन आदि का दायित्व हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रो. राम दुलार शुक्ल वहन कर रहे हैं।

मैं डा. रामचरण मेहरोत्रा को और अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूं।

इन पुस्तकों को इतने अच्छे ढंग से प्रकाशित करने के लिए मैं परिषद् के प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष और उनके सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और अभिभावकों की प्रतिक्रियाओं का हम स्वागत करेंगे, ताकि इन्हें और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली





दो शब्द

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) की *पढ़ें और सीखें* योजना के अंतर्गत यह एक छोटा-सा प्रयास है। जब परिषद् के प्रगतिशील निदेशक प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत ने मुझे इस दिशा में विज्ञान के विषयों का कार्यभार संभालने के लिए आमंत्रित किया तो अपने वैज्ञानिक मित्रों की अतिव्यस्तता के कारण यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने में मुझे संकोच था।

इस दिशा में मेरा प्रयास रहा है कि विज्ञान के विभिन्न विषयों के जाने-माने विद्वानों को इस सराहनीय कार्य के लिए निमंत्रित कर सकूं। ऐसा मेरा विश्वास है कि खोज और अनुसंधान की आनंदपूर्ण अनुभूतियों वाले वैज्ञानिक ही अपने आनंद की एक झलक बच्चों तक पहुंचा सकते हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूं कि उन्होंने अंकुरित होने वाली पीढ़ी के लिए अपने बहुमूल्य समय में से कुछ क्षण निकालने का प्रयास किया। बच्चे राष्ट्र की सबसे बहुमूल्य और महत्वपूर्ण निधि हैं और मेरे लिए यह किंचित आश्चर्य और संतोष की बात है कि हमारे इतने लब्धप्रतिष्ठ और अत्यंत व्यस्त वैज्ञानिक देश के बच्चों के लिए थोड़ा परिश्रम करने को सहर्ष तैयार हो गए हैं। मैं सभी वैज्ञानिक मित्रों के लिए हृदय से आभारी हूं।

इन पुस्तकों की तैयारी में हमारा मुख्य ध्येय रहा है कि विषय ऐसी शैली में प्रस्तुत किया जाए कि बच्चे स्वयं इसकी ओर आकर्षित हों, साथ ही भाषा इतनी सरल हो कि बच्चों को इनके अध्ययन से विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों को समझने में कोई कठिनाई न हो। इन पुस्तकों के पढ़ने से उनमें अधिक पढ़ने की रुचि पैदा हो, उनके नैसर्गिक कौतूहल में वृद्धि हो जिससे ऐसे कौतूहल और उसके समाधान के लिए स्वप्रयत्न उनके जीवन का एक अंग बन जाए।

यह योजना परिषद् के वर्तमान निदेशक प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत की प्रेरणा से चल रही है। मैं उन्हें इसके लिए बधाई और धन्यवाद देता हूं।

डॉ. चंद्रशेखर पांडे ने इस पुस्तक को लिखने के लिए मेरा अनुरोध स्वीकार किया जिसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी हूं। परिषद् के विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रो. राम दुलार शुक्ल विज्ञान की पुस्तकों के लेखन से संबंधित योजना के संयोजक एवं संपादक हैं और बहुत परिश्रम और कुशलता से अपना कार्य कर रहे हैं। मैं प्रो. शुक्ल को हृदय से धन्यवाद देता हूं।

आशा है कि ऐसी पुस्तकों से हमारी नई पीढ़ी में बाल्यकाल से ही वैज्ञानिक मानसिकता का शुभारंभ हो सकेगा और विज्ञान के नवीनतम ज्ञान के साथ ही उन्हें अपने देश की प्रगतियों एवं वैज्ञानिकों के कार्यों की झलक मिल सकेगी जिससे उनमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना का भी सृजन होगा।

रामचरण मेहरोत्रा
अध्यक्ष
पढ़ें और सीखें योजना
(विज्ञान)





लेखक परिचय

चंद्रशेखर पांडे का जन्म अल्मोड़ा (उ.प्र.) में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, अल्मोड़ा तथा तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। वानस्पतिक रसायन में डॉक्टरेट के उपरांत रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति हुई। सन् 1972 के पश्चात् हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला में आकर अध्यापन तथा अन्वेषण कार्य जारी रखा। अन्वेषण कार्य के लिए अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया में लगभग नौ वर्ष बिताए और स्टेट यूनीवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क, बफेलो, परड्यू यूनीवर्सिटी, इंडियाना, यू.एस.ए., ब्रुकहेवन नेशनल लेबोरेटरी, न्यूयार्क तथा बौंड यूनीवर्सिटी, ऑस्ट्रेलिया में रहकर अन्वेषण कार्य किया। अन्वेषण के विषय रहे हैं – प्रोटीन, पॉलिपेप्टाइड संश्लेषण, बहुलक (polymer) तथा कार्बनिक रसायन संश्लेषण में उनका उपयोग, स्यूडोपेप्टाइड एन्ज़ाइम निरोधक (pseudopeptide enzyme inhibitors) इत्यादि। अनेक अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान सम्मेलनों में अन्वेषण कार्य प्रस्तुत करते रहे हैं। हिंदी में वैज्ञानिक विषयों के लेखन की रुचि का कई माध्यमों से पोषण करते हैं।

अवकाशोपरांत हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में सी.एस.आई.आर. के एमरिटस वैज्ञानिक (Emeritus Scientist) रहे तथा संप्रति यहीं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के एमरिटस अध्येता (Emeritus Fellow) के रूप में कार्यरत हैं।



गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो. क. गांधी



विषय सूची

1

विषय-प्रवेश

संसार में प्राणिमात्र का अस्तित्व केवल वनस्पति पर आधारित है, यह एक निर्विवाद सत्य है। वनस्पति अपने भोजन का स्वयं निर्माण करती है जबकि मनुष्य तथा समस्त प्राणियों में यह क्षमता नहीं है। वह अपने भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनस्पति तथा उसके उत्पादों पर निर्भर रहते हैं। आप कहेंगे मांसाहारी जीव तो इसका अपवाद हैं। यह सत्य नहीं है। वे पशु जो मांसाहारी जीवों का भोजन बनते हैं स्वयं वनस्पति भोजी हैं, इसलिए भोजन की यह शृंखला वनस्पतियों के संसार में आकर ही रुकती है। जीवधारियों तथा वनस्पति का यह पारस्परिक संबंध केवल भोजन तक ही सीमित नहीं है जिसका सामंजस्य प्रकृति ने अपने ही अनूठे ढंग से किया है। जीवधारियों को ऑक्सीजन तथा वनस्पति को कार्बन डाइऑक्साइड की आवश्यकता भी इनके परस्पर पूरक होने के संबंध की द्योतक है। मनुष्य तो अपनी अन्यान्य आवश्यकताओं जैसे — वस्त्र, ईंधन, आवास इत्यादि की आपूर्ति के लिए भी वनस्पति जगत पर निर्भर रहता है। इसलिए यदि वनस्पति न रही तो प्राणि-जगत भी नष्ट हो जाएगा।

संभवतः मनुष्य को इस आधारभूत संबंध का ज्ञान पृथ्वी पर अपने प्रारंभिक दिनों में ही हो गया था। पृथ्वी की प्राचीन सभ्यताओं में वनस्पति का अपना विशेष स्थान रहा है। वैदिक संस्कृति मनुष्य के लिए वनस्पति की उपयोगिता से भली-भांति परिचित थी और इस विचार से कि वनस्पतियों को सुरक्षा मिले, अनेक वृक्षों को पवित्र और पूजा के योग्य स्थान दिया गया था, 'वनस्पतयः शांति'। आज भी तुलसी के पौधे हर घर के आंगन में विशिष्ट स्थान पाते

हैं। आंवला, पीपल (चित्र 1.1), बरगद तथा अन्य वृक्षों की पूजा धूप, दीप तथा जल से की जाती है। क्यों न हो, जल की आवश्यकता जितनी हमें है उतनी ही इन वृक्षों को भी है। यह वृक्षों के सम्मान का प्रतीक है क्योंकि इन्हीं पर हमारा जीवन आश्रित है। आज भी राजस्थान का विश्नोई समाज अपने गांवों के पेड़-पौधों व जीव-जंतुओं की रक्षा अपने प्राणों की भांति करता है। बंगलौर के पास एक गांव में एक महिला पेड़ लगाना पुण्य का काम समझती है। वह पिछले 50 वर्षों में बरगद के 280 पेड़ लगा चुकी है। कल्पवृक्ष की कल्पना मनुष्य की इस गंभीर धारणा की परिचायक है कि वृक्षों से हम जो चाहें सो प्राप्त कर सकते हैं।

वे पौधे अथवा वृक्ष जिनसे हमारे भोज्य पदार्थ, बीज, फल-फूल तथा मूल प्राप्त किए जाते रहे हैं, मनुष्य के लिए प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी हैं। इसलिए उनकी खेती, उनकी वंशवृद्धि तथा उनकी सुरक्षा तो अनादि काल से होती आ रही है। मनुष्य ने कई प्रजातियों को 'शुभ' का



चित्र 1.1 : हिंदुओं के लिए पूजनीय पीपल (Ficus religiosa) का विशाल वृक्ष (बंगलौर वनस्पति उद्यान)।



चित्र 1.2 : सुपारी (पुगीफल, Areca catechu) के ताड़ सरीखे वृक्षों का सहारा लेकर बढ़ती काली मिर्च (Piper nigrum) की लताएं।

द्योतक माना। पान, पुगीफल (चित्र 1.2), नारियल इत्यादि पूजा में उपयोग किए जाते रहे हैं। केले के वृक्षों तथा आम्रपर्णों से शुभ अवसरों पर सजावट करने का प्रसंग पुराने ग्रंथों में स्थान-स्थान पर आया है-

हरद दूब दधि पल्लव फूला, पान पूगफल मंगल मूला।

एवं

सफल पूगफल कदलि रसाला, रोपे बकुल कदंब तमाला।

कुश तथा दूर्वा (दूब) का प्रयोग हिंदुओं के धार्मिक तथा अन्य शुभ कृत्यों पर आज भी किया जाता है। कमल के फूलों की सुंदरता ने 'कमलनयन', 'कमलमुख' इत्यादि विशेषणों को जन्म दिया है। इसके पत्ते स्वच्छ व्यक्तित्व के परिचायक हैं जो पानी और कीचड़ में रहने के उपरांत भी गंदगी से अछूते रहते हैं। स्वयं लक्ष्मी तथा ब्रह्मा कमल के फूल का आसन रखते हैं। नीलकमल, पीतकमल, रक्तकमल इत्यादि इसकी विविध जातियां कही गई हैं। सिरस, पलास, अशोक, कदंब इत्यादि के उल्लेखों से भारतीय साहित्य भरा हुआ है।

वायु की कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल एवं पृथ्वी से मिलने वाले कुछ खनिज तत्वों के आधार पर सूर्य के प्रकाश में वनस्पति को अनेकानेक पदार्थों का संश्लेषण करने की अद्भुत क्षमता प्राप्त है। इस जटिल रासायनिक क्रिया के अंतर्गत वानस्पतिक प्रयोगशाला में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन इत्यादि का सृजन तो प्रायः सभी पेड़-पौधे करते हैं। पेड़-पौधों द्वारा इन पदार्थों का बनाया जाना इनका प्राथमिक कार्य कहा जाएगा। इन्हीं पदार्थों को अपना भोजन बना कर जीव जगत अपने लिए अन्य उपयोगी पदार्थों का संश्लेषण कर लेता है।

पेड़-पौधों में इन प्राथमिक पदार्थों के अतिरिक्त अनेक अन्य रासायनिक पदार्थों का सृजन भी होता है। इन्हें द्वितीयक उत्पाद (secondary product) कहेंगे। इन पदार्थों को द्वितीयक उपापचयज (secondary metabolite) भी कहा जाता है। पौधों में पाए जाने वाले ये पदार्थ उपपाचन (metabolism) के अंतिम उत्पाद माने जाते हैं। परंतु यह पूर्णतया सत्य नहीं है। अनेक तथाकथित द्वितीयक उपापचयनों में रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप आगे भी परिवर्तन होते रहते हैं। कई ऐसे पदार्थ अपने जनक पौधों के लिए साधारण-सी उपयोगिता रखते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि ये द्वितीयक उत्पाद हर पौधे में नहीं पाए जाते। गन्ने

का पौधा स्वाद में मीठी चीनी (सुक्रोस) का सृजन करता है। नीम का वृक्ष कड़वे रसायन ही पैदा करता है तथा धतूरे के पौधे में विषैले पदार्थ निर्माण करने की विशेषता है। ये विशेषताएं ही इन वनस्पतियों की परिचायक हैं, कुछ इसी प्रकार जैसे उंगलियों के चिह्नों से मनुष्य का परिचय मिलता है।

द्वितीयक उत्पादों में अत्यंत अधिक विविधता है। एक ही प्रकार के अनेक पदार्थ प्रायः एक पौधे में साथ-साथ पाए जाते हैं। इनके भौतिक तथा रासायनिक गुण भी आपस में इतने अधिक मिलते-जुलते हैं कि उनको अलग-अलग करना तथा उनकी विस्तृत रासायनिक परीक्षा करना कभी-कभी एक कठिन कार्य हो जाता है। फिर भी इस दिशा में आशातीत प्रगति हुई है। रसायन शास्त्र का एक प्रमुख अंग संपूर्ण विश्व में केवल इस दिशा में ही क्रियाशील है। वैज्ञानिकों के इस विषय में इतनी रुचि लेने के कई कारण हैं। सबसे मुख्य कारण है कि वनस्पतियों में पाए जाने वाले अनेक पदार्थ औषधीय गुण रखते हैं। भारतवर्ष में प्राचीन समय से ही आयुर्वेदीय पद्धति रोगों के उपचार हेतु वनस्पतियों का उपयोग सफलतापूर्वक करती आ रही है। भारतवर्ष अपनी जलवायु की विविधता के कारण वनस्पतियों की अपार विभिन्नता समेटे हुए है। इन वनस्पतियों से औषधीय गुण रखने वाले पदार्थों को पृथक कर तथा उनका विस्तृत रासायनिक अध्ययन कर, रोग तथा उनके उपचार के लिए आधार स्थापित किया जाता है। कई तरह के प्रश्न भी उठते हैं जैसे — एक विशेष कोश में एक विशेष रसायन कैसे पैदा हुआ अथवा पौधों की एक विशेष जाति में किन अनुवांशिक क्रियाओं के द्वारा उस पदार्थ को उत्पन्न करने की क्षमता आई या फिर पौधे ने किस प्रकार एक विशेष समय तथा स्थान में एक विशेष मात्रा में उस पदार्थ का उत्पादन किया। ये सब प्रश्न वैज्ञानिकों के लिए कई चुनौतियां प्रस्तुत करते हैं। इन चुनौतियों का उत्तर ढूंढ़ते-ढूंढ़ते विज्ञान में नित्य नए तथ्य सामने आ रहे हैं और वनस्पति रसायन प्रगति की दिशा में निरंतर बढ़ रहा है।

वनस्पतियों में एक और विशेष क्षमता है कि कई असाधारण परिस्थितियों में वह असामान्य रूप से कुछ विषैले पदार्थों को या तो निष्प्रभावी रसायनों में परिवर्तित कर देते हैं या उन्हें अपने अंदर इकट्ठा कर लेते हैं। इन गुणों को जल तथा भूमि प्रदूषण में कमी करने में उपयोग किया जा सकता है। इस उद्देश्य से भी कई अन्वेषणशालाओं में संगठित प्रयोग किए जा रहे हैं।

हमारी रासायनिक प्रयोगशालाओं में जहां कार्बनिक रसायनों का संश्लेषण किया जाता है, तीव्र अम्ल, क्षार, विशेष द्रव या अभिकर्मक (reagent) प्रयुक्त होतें हैं। कभी-कभी इन्हें छूना या सूंघना भी हमारे लिए घातक हो सकता है। ऐसे भी पदार्थ प्रयोग किए जाते हैं जिन्हें हवा में तनिक भी खुला नहीं छोड़ा जा सकता या जो अत्यंत क्रियाशील तथा अस्थिर होते हैं। हमें उन रासायनिक क्रियाओं का आश्रय लेना पड़ता है जो अत्यधिक या अत्यंत निम्न ताप पर ही संपन्न हो सकती हैं। हमें उच्च दाब या कम दाब पर कार्य करना पड़ सकता है और एक पदार्थ विशेष के निर्माण में अनेक जटिल अभिक्रियाओं तथा उपकरणों का उपयोग आवश्यक हो सकता है।

पौधों की प्रयोगशाला में जहां अनेकानेक भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों का निर्माण होता है, पेचीदी रासायनिक क्रियाएं होती अवश्य हैं, परंतु यह —

- अत्यंत साधारण दशाओं में होती हैं अर्थात उदासीन pH के आस-पास। तीव्र अम्ल तथा क्षारों की आवश्यकता कहीं नहीं होती। यह साधारण तापक्रम तथा वायुमंडलीय दबाव की अवस्था में घटित होती हैं।
- जलीय माध्यम से होती हैं।
- एंज़ाइम की उपस्थिति में होती हैं जहां यह उन विशेष क्रियाओं के लिए उत्प्रेरक का कार्य करते हैं।
- तीव्र गति से होती हैं।
- उच्च दक्षता में होती हैं।
- पूर्ण रूप से त्रिविम-विशिष्ट (stereospecific) होती हैं अर्थात, जहां एक से अधिक त्रिविम समावयवी (stereoisomers) के बनने की संभावना होती है, केवल एक ही समावयव बनता है।

यह सभी एंज़ाइम प्रेरित रासायनिक अभिक्रियाओं की विशेषताएं हैं।

2

प्रकाश संश्लेषण

मेरे घर के बाहर अखरोट का एक विशाल वृक्ष है। वर्षों से मैं इसके ऊपर चहचहाते पक्षियों को देखता आया हूं। हर मौसम में भांति-भांति के पक्षी उसकी शाखों पर विश्राम किया करते हैं। कई पक्षी वर्ष के एक विशेष समय में ही दृष्टिगोचर होते हैं। इनके रंग, रूप, मधुर कंठ स्वर सभी भिन्न-भिन्न होते हैं। संभवतः इनके वार्तालाप की बोलियां भी भिन्न हों। क्यों न हों ! अपनी वार्षिक यात्राओं के विश्रामं स्थलों में ये सुदूरवर्ती स्थानों से आते हैं। प्रकृति की सभी घटनाओं और क्रियाओं की भांति यह आवागमन भी चक्रीय है। कभी यह चहल-पहल बहुत बढ़ जाती है, इस नगर के सैलानियों की तरह। जाड़ों के बर्फीले मौसम में शायद केवल कुछ कौवों तथा गौरैया की स्थानीय प्रजातियां ही दृष्टिगोचर होती हैं। जो भी हो, इन दृश्यों में इतनी क्रमबद्धता है कि एक कुशल पक्षी पर्यवेक्षक इनके दर्शन से वर्ष के विशेष समय का अनुमान लगा सकता है।

परंतु आज का हमारा नायक तो यह अखरोट का वृक्ष है। जाड़ों के आने की सूचना पाते ही इसकी पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं और गिर जाती हैं। शेष रह जाता है शाखाओं के साथ पेड़ का ढांचा (चित्र 2.1)। पेड़ जीवित भी है या नहीं, यह जानने के लिए उसकी शाखा को खुरचंना पड़ेगा। सूखी पत्तियों का ढेर व्यर्थ नहीं जाता। मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्म जीव इन्हें सड़ा-गला कर अगले वर्ष के लिए खाद बना लेते हैं। इसीलिए तो जंगल सदा हरे-भरे व स्वस्थ रहते हैं। कोई मनुष्य इन्हें खाद-पानी थोड़े ही देता है। वसंत के आगमन पर इसे हरी-भूरी कोपलों का आवरण मिलता है जो शीघ्र ही चारों ओर फैली हरियाली से स्पर्धा करने लगता

है। वर्षा ऋतु में इस पत्रावरण की बार-बार धुलाई होती है। पेड़ के घने पर्णसमूह के बीच छिपे अखरोट के फल तब तक दृष्टिगोचर नहीं होते, जब तक वह रंग बदल कर बच्चों के फेंके गए ढेले व पत्थरों का निशाना नहीं बन जाते। यह चक्र तो इसी प्रकार चलता रहता है, परंतु मुझे असामान्य कौतूहल तब होता है जब वसंत के आगमन पर पत्रविहीन वृक्ष कुछ दिनों में ही हरा-भरा हो जाता है (चित्र 2.2)। हिमपात होने पर यह हिमाच्छादित वृक्ष, श्वेत वस्त्रधारी तपस्वी की भांति लगता है तथा प्रकृति-प्रेमियों के लिए विशेष आकर्षण प्रदान करता है (चित्र 2.3)। कितनी जीवनी शक्ति और सामर्थ्य निहित है वृक्ष के अंतर में, जो अत्यंत तीव्र गति से मनों भार की पत्तियों और कोपलों का निर्माण कर सकती है और वह भी केवल हवा, पानी, प्रकाश और पृथ्वी से प्राप्त कुछ खनिजों की सहायता से। जानते हैं, यह सब कैसे संभव होता है – प्रकाश संश्लेषण (photo-synthesis) द्वारा। मनुष्य निर्मित कल-कारखाने या प्रयोगशालाएं यह कार्य करने की क्षमता नहीं रखतीं और न ही इसकी अपेक्षा की जा सकती है।



चित्र 2.1 : सर्दी के आगमन की सूचना पर अपनी असंख्य पत्रविहीन शाखाओं के साथ अखरोट-वृक्ष।

आइए देखें, पेड़-पौधे यह आश्चर्यजनक कार्य इतनी कुशलता

से कैसे करते हैं। सर्वप्रथम हमें यह देखना होगा कि इस क्रिया के उपकरण क्या हैं तथा इनके द्वारा किन पदार्थों का निर्माण होता है। मुख्य उपकरण हैं - कार्बनडाइऑक्साइड (CO_2) तथा जल (H_2O)। दोनों वायुमंडल से प्राप्त होते हैं। दूसरी आवश्यकता है ऊर्जा, जो सूर्य के प्रकाश से मिलती है तथा तीसरी आवश्यकता उन जैव रसायनों की है जो पौधों में उपस्थित रहते हैं। यदि देखा जाए तो इस संपूर्ण क्रिया में विकिरण ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित होती है तथा कार्बनडाइऑक्साइड का अवकरण होकर वह कार्बनिक रसायनों के रूप में स्थायीकृत हो जाती है। बदले में वायुमंडल को ऑक्सीजन मिलती है।



चित्र 2.2 : वसंत में हरा-भरा अखरोट-वृक्ष।

पृथ्वी में कार्बन की बहुत अधिक मात्रा है, परंतु इसका अधिकांश भाग खनिजों के रूप में विद्यमान है जो प्रकाश संश्लेषण के लिए अप्राप्य है। वायुमंडल तथा जलमंडल में कार्बन मुख्यतः कार्बनडाइऑक्साइड तथा घुलनशील कार्बोनेट के रूप में पाया जाता है। समुद्रों के जल में वायुमंडल से सौ गुना अधिक कार्बनडाइऑक्साइड है और यही भंडार वायुमंडल के कार्बन-डाइऑक्साइड का संतुलन बनाए रखता है। अनुमान है कि पिछले बीस करोड़ (2 billion) वर्षों



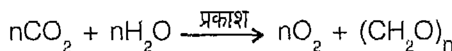
चित्र 2.3 : हिमाच्छादित अखरोट-वृक्ष।

में पौधों ने कार्बनडाइऑक्साइड की प्रायः संपूर्ण उपलब्ध राशि को प्रकाश संश्लेषण द्वारा स्थायीकृत कर लिया है। आज वायुमंडल में इसका प्रतिशत केवल 0.03 हैं। दूसरी ओर ऑक्सीजन का अनुपात शनैः शनैः बढ़ा है और वर्तमान में यह लगभग 21% है।

पृथ्वी का आरंभिक वायुमंडल कैसा था, इस विषय में वैज्ञानिकों ने अनेकानेक अनुमान दिए हैं। सर्वाधिक मान्य मतों के अनुसार इसमें नाइट्रोजन, कार्बनडाइऑक्साइड, जल तथा कुछ मात्रा में हाइड्रोजन उपस्थित थी परंतु ऑक्सीजन बिल्कुल नहीं थी। जब पृथ्वीमंडल में पौधों की सृष्टि हुई, वायुमंडल की कार्बनडाइऑक्साइड कम होने लगी। कार्बनी काल (Carboniferous period) में प्रकाश संश्लेषण अपने सर्वाधिक रूप में सामने आया। तत्पश्चात् कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा में कमी होने से यह कुछ मंद पड़ गया। इस तरह हम देखते हैं कि प्रकाश संश्लेषण ने वायुमंडल की प्रारंभिक अवकारक स्थिति को वर्तमान ऑक्सीकारक स्थिति में बदल दिया। पौधों में विकास और वृद्धि के साथ-साथ वनस्पति जीवन जल से थल की ओर बढ़ा। नए वातावरण के अनुरूप अनेक अवयव तथा कार्यों में भी परिवर्तन हुआ। परिणामस्वरूप वह पृथ्वी के हर कोने में भिन्न-भिन्न रूप और प्रकारों में ढल गए। इस क्रिया में भूमि के ऊपर रहने वाले भाग, विशेषकर पत्तियों ने सूर्य की विकिरण ऊर्जा को ग्रहण करने तथा उसका उपयोग करने में दक्षता प्राप्त की और भूमि के भीतर रहने वाले भाग, जड़ों ने पृथ्वी से आवश्यक खनिजों को खींचने का काम संभाला।

प्रकाश संश्लेषण द्वारा जो मुख्य रसायन बनते हैं, वह हैं ग्लूकोज़, अन्य कार्बोहाइड्रेट तथा विशाल अणु वाले पॉलिसैकेराइड (स्टार्च, सेलुलोस, इनूलिन) इत्यादि। इनके अतिरिक्त वसा, न्यूक्लीइक अम्ल, रंगीन द्रव्य, ऐमीनो अम्ल इत्यादि अत्यंत आवश्यक पदार्थ भी प्रकाश संश्लेषण की देन हैं। जहां कहीं गंधक या नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, यह भूमि से प्राप्त सल्फेट तथा नाइट्रेट खनिजों से मिलते हैं। इस प्रकार यदि प्रकाश संश्लेषण को इसकी संपूर्णता में देखा जाए तो यह कार्बनडाइऑक्साइड, सल्फेट तथा नाइट्रेट के रासायनिक अवकरण द्वारा अनेक पदार्थों के सृजन की जननी है।

प्रकाश संश्लेषण के द्वारा कार्बोहाइड्रेट बनने की क्रिया निम्न समीकरण से दी जाती है–

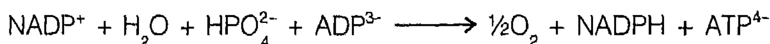


$$nCO_2 + nH_2O \xrightarrow{\text{प्रकाश}} nO_2 + (CH_2O)_n$$

यह ध्यान रहे कि प्रकाश संश्लेषण की अनेक क्रियाओं में से यह केवल एक क्रिया को दर्शाता है। इस समीकरण से स्पष्ट है कि कार्बनडाइऑक्साइड के एक अणु की खपत होने पर ऑक्सीजन

का एक अणु मिलता है। कार्बनडाइऑक्साइड से चाहे कार्बोहाइड्रेट बने या वसा या कार्बोक्सिलिक अम्ल, यह सब कार्बनडाइऑक्साइड के अवकरण के प्रतीक हैं। यदि एककोशिकीय शैवाल (algae) को प्रयोगशाला में कम प्रकाश की स्थिति में रखा जाए तो कार्बनडाइऑक्साइड का अवकरण कार्बोक्सिलिक अम्ल की अवस्था तक ही हो पाता है। पेड़-पौधे नीले रंग के प्रकाश की अपेक्षा लाल रंग के प्रकाश (680 nm) को अधिक दक्षता के साथ उपयोग कर लेते हैं, भले ही इसमें ऊर्जा कम होती है। एकक्तोशिकीय शैवाल के प्रयोगशाला में लाल रंग के प्रकाश को उपयोग करने की दक्षता लगभग 30% होती है जबकि खेतों में प्राकृतिक दशाओं में यह दक्षता केवल 1-2% है। यह ध्यान देने योग्य है कि विकिरण ऊर्जा का एक बड़ा भाग वाष्पोत्सर्जन (transpiration), श्वसन (respiration) तथा प्रकाश संश्लेषण द्वारा बने पदार्थों को पेड़-पौधों में अन्यत्र भेजने में व्यय होता है। प्रकाश संश्लेषण द्वारा उन आवश्यक रसायनों का भी निर्माण होता है जो स्वयं इस क्रिया में भाग लेते हैं।

पेड़-पौधों में प्रकाश संश्लेषण के लिए वह अवयव जो प्रकाश को ग्रहण करते हैं, क्लोरोप्लास्ट कहलाते हैं। क्लोरोप्लास्ट में प्रोटीन, वसा, क्लोरोफिल a तथा b, कैरोटीनॉइड, न्यूक्लीइक अम्ल तथा अकार्बनिक तत्व उपस्थित रहते हैं। क्लोरोप्लास्ट का एक मुख्य कार्य है एडिनोसिन डाइफॉस्फेट (ए.डी.पी.) को एडिनोसिन ट्राइफॉस्फेट (ए.टी.पी.) में तथा निकोटिनैमाइड ऐडेनीन डाइन्यूक्लीयोटाइड फॉस्फेट (एन.ए.डी.पी.) को अवकृत निकोटिनैमाइड ऐडेनीन डाइन्यूक्लीयोटाइड (एन.ए.डी.पी.एच.) में बदलना –



$$NADP^{+} + H_2O + HPO_4^{2-} + ADP^{3-} \longrightarrow \tfrac{1}{2}O_2 + NADPH + ATP^{4-}$$

यह समीकरण फ़ोटो इलैक्ट्रॉन ट्रांसफर अथवा प्रकाश की सहायता से इलैक्ट्रॉनों के स्थानांतरण को दर्शाता है। ए.टी.पी. संचित ऊर्जा की वह उपयोगी निधि है जिसे आवश्यकतानुसार कहीं भी भुनाया जा सकता है।

प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा कार्बनडाइऑक्साइड से आरंभ करके किस प्रकार कौन से पदार्थों की सृष्टि होती है, इसका पीछा करना साधारण काम नहीं है क्योंकि अनेक पदार्थ अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में निर्मित होते हैं। इस दुष्कर कार्य को गति तब मिली जब रेडियोसक्रिय ^{14}C से बनाए जाने वाले रसायनों का निर्माण प्रयोगशालाओं में संभव हो पाया। यदि पौधों को रेडियोसक्रिय कार्बन से युक्त कार्बनडाइऑक्साइड ($^{14}CO_2$) के वातावरण में प्रकाश संश्लेषण

के लिए रखा जाए तो इससे निर्मित होने वाले कार्बनिक पदार्थों में रेडियोसक्रिय कार्बन होगा। ऐसे पदार्थ अपने विकिरणों के कारण फोटोग्राफी की फिल्म पर उसी प्रकार प्रभाव डालते हैं जैसे साधारण प्रकाश।

तत्कालीन दूसरी उपयोगी खोज थी द्विविम कागज़ वर्णलेखन (Two-dimensional paper chromatography — दो परस्पर समलंब दिशाओं में की जाने वाली पेपर क्रोमैटोग्रैफी) जिसकी सहायता से प्रकाश संश्लेषण द्वारा निर्मित रसायनों की अत्यंत सूक्ष्म मात्रा को विशेष प्रकार के कागज़ (क्रोमैटोग्रैफिक कागज़) के धरातल में पृथक करना संभव हो गया। अंधेरे में यदि अब इस कागज़ के ऊपर फोटोग्रैफी की फिल्म रख दी जाए तो फिल्म के उन स्थलों में जो रेडियोसक्रिय कार्बनिक पदार्थों के संपर्क में थे, उनका चित्र अंकित हो जाएगा। फिल्म को विकसित करने पर ये पदार्थ आसानी से संसूचित (detect) हो जाएंगे। इस विधि से प्रकाश संश्लेषण के उत्पादों को पहचानना सरल हो गया। तब यह भी देखा गया कि केवल 1-2 सेकेंड मात्र के लिए प्रकाश संश्लेषण होने पर कई पदार्थ संसूचनात्मक (detectable) मात्रा में पहचान लिए गए। इन प्रयोगों से वैज्ञानिकों को प्रकाश संश्लेषण की अत्यंत तीव्र गति का आभास भी हुआ। यदि कार्बनडाइऑक्साइड तथा प्रकाश प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों तो एक हरी कोशिका (cell) प्रति घंटे अपने आयतन का तीस गुना ऑक्सीजन उत्पादन करने की क्षमता रखती है।

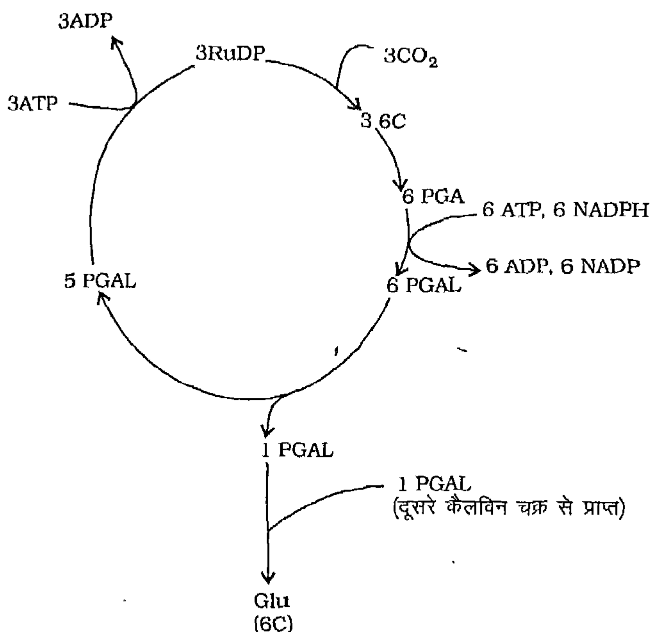
आज रसायनों के जटिल मिश्रणों की अत्यंत सूक्ष्म-मात्रा का पृथक्करण, मापन, सही रूप से पहचानने की कला तथा उपकरण इतने विकसित हो चुके हैं जो केवल दो दशक पूर्व एक कल्पनातीत प्रकरण था।

पौधों द्वारा वायुमंडलीय कार्बनडाइऑक्साइड का अवकरण होकर ग्लूकोज़ तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट के सृजन में ATP तथा NADPH की प्राथमिक भूमिका है। इस क्रिया के उत्पाद समस्त जीव जगत के लिए खाद्य की आपूर्ति करते हैं और इन्हीं की आधारशिला पर द्वितीयक उत्पादों (secondary products) की सृष्टि होती है।

पत्तियों में प्रकाश संश्लेषण द्वारा CO_2 का स्वांगीकरण (assimilation) एक जटिल प्रक्रिया है। इसे समझने तथा इसके मार्ग को परीक्षणों द्वारा पहचानने के शोधकार्य में जिन सैकड़ों वैज्ञानिकों की विशेष भूमिका रही, उनमें मेलविन कैलविन का नाम अग्रणी है। उनके इस असाधारण योगदान के लिए उन्हें सन् 1961 में नोबेल पुरस्कार से अलंकृत किया गया। आइए, प्रकाश संश्लेषण के इन पथों (pathways) की संक्षिप्त विवेचना करें।

C_3 प्रकाश संश्लेषण

C_3 प्रकाश संश्लेषण या कैलविन चक्र (Calvin Cycle) उस पथ का नाम है जिसमें कार्बनडाइऑक्साइड के तीन अणुओं का स्वांगीकरण होता है। निम्नांकित चित्र 2.4 में इस चक्र में होने वाली क्रियाओं को दर्शाया गया है।



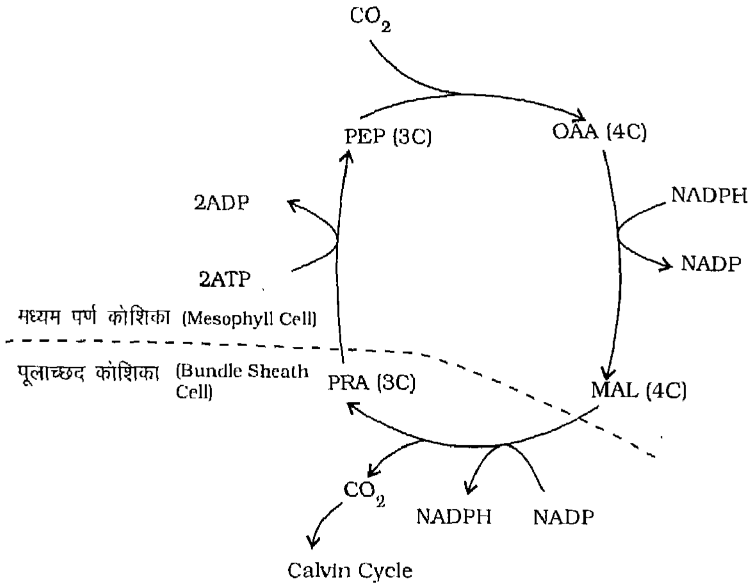
चित्र 2.4 : कैलविन चक्र की रूपरेखा।
RuDP = रिबुलोज़ डाइफॉस्फेट
PGA = फॉस्फोग्लिसरिक अम्ल
PGAL = फॉस्फोग्लिसरेल्डीहाइड
Glu = ग्लूकोज़

रिबुलोज़ पांच कार्बन वाली एक शर्करा है, जिसके तीन अणु, कार्बनडाइऑक्साइड के तीन अणुओं से मिलकर एंज़ाइम प्रेरित क्रियाओं द्वारा फॉस्फोग्लिसरिक अम्ल के छः अणु बनाते हैं। इस क्रिया में वायुमंडलीय CO_2 का अवकरण तथा स्थिरीकरण (fixation) होता है। प्रयोगों द्वारा पाया गया कि यह क्रिया अत्यंत तीव्र गति से होती है यहां तक कि लगभग 70% CO_2 इस क्रिया के आरंभिक क्षणों में ही स्वांगीकृत (assimilate) हो जाती है। पुनः अवकरण द्वारा फॉस्फोग्लिसरेल्डीहाइड के छः अणुओं की सृष्टि होती है। इनमें से एक अणु तो दूसरे कैलविन चक्र से उपलब्ध PGAL से मिलकर ग्लूकोज़ बनाता है तथा शेष पांच अणु अनेक अभिक्रियाओं के मार्ग से होते हुए RuDP के तीन अणुओं को कैलविन चक्र को लौटा देता है। ग्लूकोज़ अधिकांशतः ग्लूकोज़ फॉस्फेट के रूप में मिलता है जो एंज़ाइमों की सहायता से सुक्रोस (चीनी) अथवा अन्य पदार्थों में बदल जाता है। यह सब पदार्थ पत्तियों से पौधों के अन्य अवयवों को, जहां इनकी आवश्यकता हो, भेजे जा सकते हैं।

C_4 प्रकाश संश्लेषण

C_4 प्रकाश संश्लेषण या हैच-स्टैक चक्र द्वारा कार्बनडाइऑक्साइड (CO_2) का स्थिरीकरण गन्ना, मक्का तथा शीघ्रता से बढ़ने वाले कुछ अन्य पौधों की पत्तियों में होता है। इन पत्तियों की विशेषता यह है कि इनमें दो प्रकार की कोशिकाएं होती हैं – मध्यम पर्ण (mesophyll) जो पत्तियों की सतह के समीप होती हैं तथा पूलाच्छद (bundle sheath) जो कुछ अंदर की ओर होती हैं। CO_2 मध्यम पर्ण की कोशिकाओं में प्रवेश करती हैं जहां वह फॉस्फोइनोलपाइरुवेट से संयोग कर ऑक्ज़ेलोएसीटिक अम्ल बनाती है (चित्र 2.5)। तत्पश्चात् इसके अवकरण द्वारा मैलिक अम्ल बनता है जो पूलाच्छद कोशिकाओं (bundle sheath cells) में ऑक्सीकृत होकर CO_2 तथा पाइरुविक अम्ल में बदल जाता है। CO_2 कैलविन चक्र में प्रयुक्त हो जाती है तथा पाइरुविक अम्ल मध्यम पर्ण कोशिकाओं में जाकर फॉस्फोइनोलपाइरुवेट में बदल कर पुनः हैच-स्टैक चक्र के लिए उपलब्ध हो जाता है।

इस जाति के पौधों में श्वसन (respiration) की क्रिया द्वारा कार्बनडाइऑक्साइड का उत्पादन अपेक्षाकृत मंद गति से होता है। एक धारणा के अनुसार श्वसन द्वारा बाहर निकलती हुई CO_2 उपरोक्त हैच-स्टैक चक्र में पुनः समावेशित हो जाती है तथा CO_2 का उपयोग अधिक दक्षता (efficiency) से सम्पन्न हो पाता है। जो पौधे इस विधि से प्रकाश संश्लेषण करते हैं वह C_4 पौधे कहलाते हैं। इनमें रिबुलोज़ को CO_2 से संयोग कराने वाली एंज़ाइम कम मात्रा में पाई जाती है (चित्र 2.4) तथा उस एंज़ाइम की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है जो पाइरुविक अम्ल को फॉस्फोइनोलपाइरुवेट में बदलती है (चित्र 2.5)।



चित्र 2.5 : हैच-स्टैक चक्र की रूपरेखा।
PEP = फॉस्फोइनोलपाइरुवेट, PRA = पाइरुविक अम्ल
OAA = ऑक्ज़ेलोएसीटिक अम्ल, MAL = मैलिक अम्ल

CAM प्रकाश संश्लेषण

सूखे और मरुस्थलीय प्रदेशों में दिन में ताप अधिक होता है और नमी कम होती है। ऐसी परिस्थितियों में पौधे वाष्पोत्सर्जन (transpiration) द्वारा जल का अपव्यय कर स्वयं सूख न जाएं, इससे बचने के लिए पौधों के रंध्र (stomata) दिन में बंद हो जाते हैं। रात्रि में ही रंध्र खुलने पर वाष्पोत्सर्जन संभव है परंतु तब तापक्रम अपेक्षाकृत कम तथा नमी अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण यह धीमी गति से होता है। यही इन पौधों के लिए लाभप्रद भी है। रात्रि में रंध्र खुल जाने पर प्रकाश संश्लेषण संभव है और क्रस्यूलेसी (Crassulaceae), यूफोर्बियेसी (Euphorbiaceae), कैक्टेसी (Cactaceae) तथा कई अन्य प्रजातियों के पौधों में प्रकाश की अनुपस्थिति में भी CO_2 के स्थिरीकरण की क्षमता होती है। C_4 प्रकाश संश्लेषण की भांति परंतु अंधेरे में एक ही कोशिका के अंदर फॉस्फोइनोलपाइरूवेट तथा CO_2 के संयोग से पहले ऑक्ज़ेलोएसीटिक अम्ल तथा फिर मैलिक अम्ल बनता है। CO_2 स्थिरीकरण के इस स्वरूप का अध्ययन सर्वप्रथम क्रस्यूलेसी प्रजाति के पौधों में किया गया, इसीलिए इसे क्रस्यूलिसियन अम्ल उपपाचन (Crassulacean Acid Metabolism, सी.ए.एम.) का नाम दिया गया।

3

कार्बोहाइड्रेट

ग्लूकोज़ तो बन गया पर बेचारी वनस्पति ग्लूकोज़ से अपना शरीर तो नहीं बना सकती। उसे चाहिए कुछ ठोस सशक्त हाथ-पैर जिससे वह प्रकाश संश्लेषण की इस हरी-भरी प्रयोगशाला को थाम तो सके। ग्लूकोज़ तो केवल छः कार्बन का छोटा-सा अणु है। इस रूप में क्या सहनशक्ति होगी ! थोड़ा पानी ही पड़ जाए तो बस इसकी इमारत का घोल बन जाएगा। सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा। परंतु प्रकृति जानती है कि जितना बड़ा अणु होगा, पदार्थ में उतनी ही मज़बूती होगी। उसने सारा सामान तो जुटा रखा है फिर क्यों न एक बहुलक बना लिया जाए, ग्लूकोज़ के अणुओं से। वृक्ष की अपनी प्रयोगशाला है। यहां रात-दिन काम चलता रहता है। न किसी को शिकायत है, न कोई कामचोरी करता है और न किसी को अपने काम को अधिक महत्वपूर्ण दिखाने की चाह है। न झगड़े, न द्वेष और न ही प्रतिस्पर्धा। हर अभिकर्मक (reagent) अपना काम पूरे विवरण के साथ जानता है कि किस कोशिका में कब, कहां और क्या अभिक्रिया होगी। यह कोशिकाएं ही तो उसकी परखनलियां हैं।

ग्लूकोज़ से बहुलक सेलुलोस तक की यात्रा बहुत लंबी है। सेलुलोस 3500 से भी अधिक ग्लूकोज़ के अणुओं से बनता है और इसका अणु भार 5,70,000 से भी अधिक हो सकता है। पौधे ग्लूकोज़ की भांति ही अनेक अन्य शर्कराएं बनाते हैं तथा इन सबका अपना-अपना स्थान और महत्व है। इन्हीं के आधार पर पौधों में पाए जाने वाले अनेक आवश्यक रसायनों की सृष्टि होती है। आरंभिक अध्ययनों में यह पाया गया था कि इन पदार्थों में कार्बन,

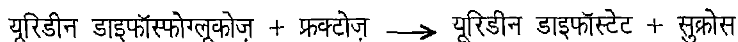
हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन 1:2:1 के अनुपात में उपस्थित थे, जैसे यह कार्बन के हाइड्रेट हों, $C_n(H_2O)_n$। इसीलिए इन्हें कार्बोहाइड्रेट कहा गया। कालांतर में इनके अनेक व्युत्पन्न (derivative) ऐसे पाए गए जिनमें नाइट्रोजन तथा सल्फर भी उपस्थित थे। इन सबको कार्बोहाइड्रेट पदार्थों में सम्मिलित कर लिया गया।

सुविधा के लिए कार्बोहाइड्रेट को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है – मोनोसैकेराइड, जल-अपघटन (हाइड्रोलिसिस) द्वारा जिनका विच्छेदन करने पर और अधिक छोटे कार्बोहाइड्रेट नहीं मिलते; ओलिगोसैकेराइड, जिनका विच्छेदन करने पर छोटे कार्बोहाइड्रेट के 2 से 10 अणु मिलते हैं; तथा पॉलिसैकेराइड, जिनका विच्छेदन करने पर कार्बोहाइड्रेट के और भी अधिक अणु प्राप्त होते हैं। अधिकांश पौधों द्वारा निर्मित छोटे अणुओं वाले कार्बोहाइड्रेट इस रूप में संचित नहीं किए जाते। कुछ पौधे इसका अपवाद अवश्य हैं। हम जानते हैं कि गन्ना, मक्का तथा मैपिल (maple) वृक्षों के तनों, चुकंदर, गाजर तथा शकरकंद की जड़ों, ताड़ की पत्तियों के डंठलों तथा अनेक फूलों व फलों में मोनो तथा डाइसैकेराइड पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहते हैं। मनुष्य ने इन पदार्थों के लिए दीर्घ काल से ऐसे पौधों की खेती की है।

मोनो तथा ओलिगोसैकेराइड

चार मुख्य मोनोसैकेराइड जिनमें कार्बन के 6 अणु होते हैं, ग्लूकोज़, मैनोज़, गैलेक्टोज़ तथा फ्रक्टोज़ हैं। सबसे अधिक मात्रा में ग्लूकोज़ स्वतंत्र रूप में अथवा सुक्रोस या चीनी, स्टार्च तथा सेलुलोस के रूप में पाया जाता है। शेष तीन मोनोसैकेराइड भी क्रमशः मैनन, गैलेक्टन तथा इनूलिन बहुलकों के रूप में पाए जाते हैं। पांच कार्बन अणुओं वाले सबसे अधिक पाए जाने वाले कार्बोहाइड्रेट हैं रिबोज़ तथा डिऑक्सीरिबोज़ जो आर.एन.ए. तथा डी.एन.ए. जैसे महत्वपूर्ण रसायनों के अंग हैं।

सबसे अधिक पाई जाने वाली तथा महत्वपूर्ण डाइसैकेराइड है सुक्रोस या चीनी। यह ग्लूकोज़ तथा फ्रक्टोज़ के एक-एक अणुओं के संयोग से बनती है। पौधों में सुक्रोस बनने का एक अंतिम चरण निम्न अभिक्रिया से संचालित होता है –



इस क्रिया में सुक्रोस सिंथेटेज़ नामक एंज़ाइम सहयोग देता है। पत्तियों में संश्लेषित सुक्रोस तुरंत पौधों के उन भागों में भेज दी जाती है जहां उनका भंडारण होता है। एक रोचक उदाहरण में यह गणना की गई है कि एक तरबूज़ एक महीने के अंतराल में लगभग 300 ग्राम सुक्रोस अपने अंदर जमा कर लेता है। इसके यह माने हैं कि लगभग 4.5×10^{24} सुक्रोस के अणु पत्तियों से फल तक पहुंचते हैं। यह संख्या इतनी अधिक है कि यदि इतने अणुओं को एक से एक जोड़ कर रखा जाए तो यह शृंखला 2500 अरब मील लंबी होगी।

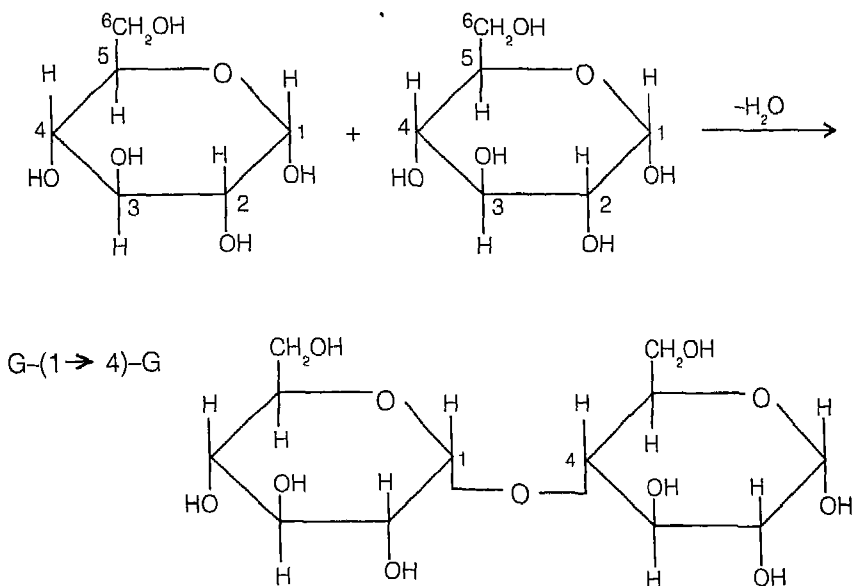
पॉलिसैकेराइड

स्टार्च – स्टार्च पेड़-पौधों का संरक्षित (reserve) कार्बोहाइड्रेट है। पत्तियों में संश्लेषित होकर यह भंडारण के लिए जड़ों, कंदों (tubers), बीजों एवं फलों में चला जाता है। स्टार्च ठंडे जल में अघुलनशील है परन्तु 60-80^{0}C तक गरम करने पर यह जलीय परिक्षेप (dispersion) के रूप में बदल जाता है। स्टार्च पौधों के लिए संचित ऊर्जा का भंडार है। बीजों के अंकुरण काल में जब तक प्रकाश संश्लेषण की व्यवस्था नहीं होती उनमें संचित स्टार्च ही उस समय होने वाली सभी क्रियाओं के संचालन में ऊर्जा की आपूर्ति करता है। जब फल और बीज बनते हैं तब पौधों की जड़ों या कंद में संचित स्टार्च ही फिर काम में आता है। स्टार्च अनेक उद्योगों के लिए उपयोगी पदार्थ ही नहीं है वरन मनुष्य तथा वनस्पति-भोजी जंतुओं का भोजन भी है। स्टार्च दो प्रकार के पॉलिसैकेराइड का मिश्रण है, ऐमिलोस तथा ऐमिलोपेक्टिन।

ऐमिलोस स्टार्च का अप्रधान भाग है। इसका एक अणु, ग्लूकोज़ के 200-400 अणुओं से बनता है। ऐमिलोस आयोडीन के साथ तेज़ नीला रंग देता है। 100 ग्राम ऐमिलोस, 19 ग्राम आयोडीन को बांध कर रख सकता है। पोटैशियम क्लोराइड या पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड के जलीय विलयन में यह एक अत्यंत विस्कासी (viscous) घोल बनाता है। प्रयोगों से ज्ञात होता कि ऐमिलोस के अणु बिना शाखाओं की लंबी शृंखलाओं द्वारा बने हैं।

ऐमिलोपेक्टिन स्टार्च का मुख्य अंग है। इसका अणुभार लगभग पांच से दस लाख तक होता है तथा इसके अणु अनेक शाखाओं में विभाजित रहते हैं। आयोडीन के साथ यह बैंगनी रंग देता है।

अब यह देखना होगा कि पौधे स्टार्च कैसे बनाते हैं। यह स्पष्ट है कि स्टार्च में ग्लूकोज़ के अणु आपस में ग्लूकोसाइड बंधों से जुड़ कर ही लंबी शृंखला वाले अणुओं का निर्माण करते हैं। ग्लूकोसाइड बंध एक ग्लूकोज़ के अणु के C_1 – OH (C_1 में स्थित -OH) तथा दूसरे ग्लूकोज़ के C_4–OH (C_4 में स्थित –OH) की परस्पर क्रिया से बनता है-

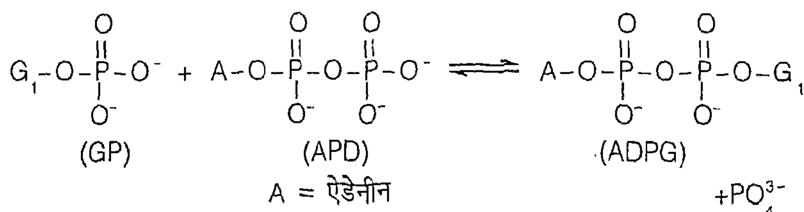


चित्र 3.1 : स्टार्च में ग्लूकोज़ की दो इकाइयों का पारस्परिक बंध।

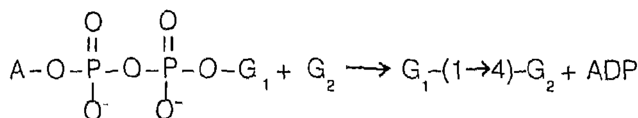
इसे G-(1→ 4)-G द्वारा दर्शाते हैं। चित्र 3.1 यह स्पष्ट करता है कि पहले ग्लूकोज़ का C_1–OH (ग्लाइकोसाइडिक OH) जो अन्य OH से भिन्न होता हैं, तथा दूसरे ग्लूकोज़ का C_4–OH आपस में ग्लूकोसाइड बंध द्वारा जुड़े हुए हैं।

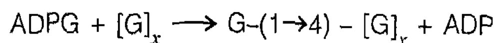


सबसे पहले ग्लूकोज़-1-फॉस्फेट (जी.पी.) तथा एडिनोसिन डाइफॉस्फेट (ए.डी.पी.) की पाइरोफॉस्फोराइलेज़ नामक एंज़ाइम की उपस्थिति में क्रिया के द्वारा एडिनोसिन डाइफॉस्फेट ग्लूकोज़ (ए.डी.पी.जी.) बनता है -



ए.डी.पी.जी. में ग्लूकोज़ का C_1-OH सक्रिय अवस्था में रहता है जो स्टार्च सिंथेटेज़ नामक एंज़ाइम की उपस्थिति में दूसरे ग्लूकोज़ अणु G_2 के C_4-OH से क्रिया करके डाइसैकेराइड G_1-(1→ 4)-G_2 बनाता है। यह क्रिया इसी प्रकार चलती रहती है तथा ऐमिलोस की एक लंबी श्रृंखला का संश्लेषण होता है -





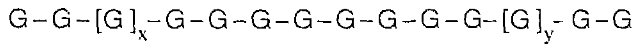
$$ADPG + [G]_x \longrightarrow G\text{-}(1\rightarrow 4) - [G]_x + ADP$$

ऐमिलोपेक्टिन बनने में एक अन्य एंज़ाइम की, जिसे Q- एंज़ाइम कहते हैं, मुख्य भूमिका है। यह एंज़ाइम दो कार्य करता है–

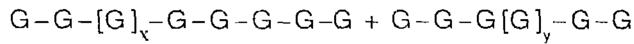
(1) ग्लूकोज़ की श्रृंखला में से एक छोटी श्रृंखला को जल-अपघटन (हाइड्रोलिसिस) द्वारा पृथक करना।

(2) इस छोटी श्रृंखला को शेष श्रृंखला के मध्य में किसी ग्लूकोज़ के C_6-OH से क्रिया कर (1→ 6) ग्लूकोसाइड बंध द्वारा जोड़ना।

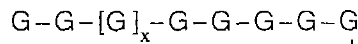
इन क्रियाओं को चित्र 3.2 द्वारा स्पष्ट किया गया है -

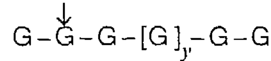


(a) ↓ Q-एंज़ाइम



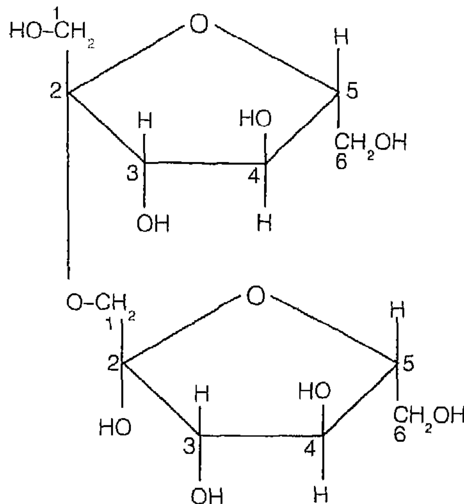
(b) ↓ Q-एंज़ाइम





चित्र 3.2

Q–एंज़ाइम तभी अपना काम करता है जब शृंखलाबद्ध ग्लूकोज़ के अणु का आक़ार इतना बड़ा हो जाए कि वह इस एंज़ाइम के लिए आवश्यक सबस्ट्रेट (substrate) का काम कर सके। यह भी आंका गया है कि इस एंज़ाइम की क्षमता केवल 4-5% (1→6) बंध बनाने तक ही सीमित है।



चित्र 3.3 : इनूलिन में फ्रक्टोज़ की दो इकाइयों का पारस्परिक बंध।

कुछ पौधे ऐसे भी हैं जिनमें ग्लूकोज़ के स्थान पर फ्रक्टोज़ के पॉलिसैकेराइड संरक्षित पदार्थ के रूप में जमा रहते हैं। इनूलिन (चित्र 3.3) एक ऐसा ही पॉलिसैकेराइड है जो डहेलिया के कंदों (tubers) से प्राप्त किया गया है। इनूलिन में फ्रक्टोज़ के अणु परस्पर (2→1) बंधों द्वारा जुड़े रहते हैं। इनूलिन का अणु (अणुभार 10000) तुलना में सेलुलोस से बहुत छोटा होता है।

सेलुलोस

सेलुलोस पौधों में सबसे अधिक पाया जाने वाला पदार्थ है। बड़े बहुवर्षी (perennial) वृक्षों में यह उनके भार की आधी से भी अधिक मात्रा में पाया जाता है। वार्षिक (annual) पौधों में इसकी मात्रा 30-40 प्रतिशत होती है। सर्वप्रथम फ्रांस के पेयन नामक वैज्ञानिक ने

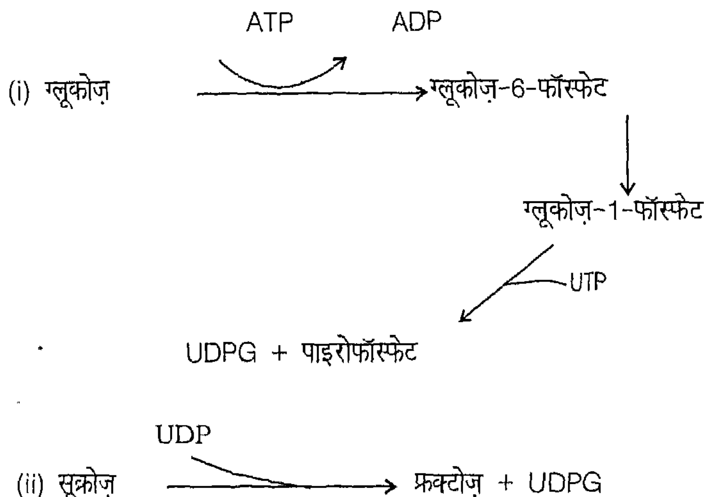


चित्र 3.4 : Bombax ceiba DC (मूल स्थान जावा) वृक्ष का निचला भाग (बंगलौर वनस्पति उद्यान)। यदि वृक्ष का क्षैतिज विस्तार बड़ा हो तो तने तथा जड़ों का विस्तार भी उसे संभालने योग्य होना चाहिए।

सन् 1838 में इसे पौधों से प्राप्त किया और इसे सेलुलोस का नाम दिया। रुई (cotton) सेलुलोस का सबसे शुद्ध प्राकृतिक रूप (98%) है। धरती पर उगने वाले पौधों की कोशिकाओं की दीवारें सेलुलोस की बनी होती हैं। सेलुलोस कई अन्य पदार्थों के साथ मिलकर पौधों के लिए काष्ठ का निर्माण करता है। ये पदार्थ मुख्यतः लिग्निन (lignin), हेमीसेलुलोस, पेक्टिन इत्यादि हैं जो सेलुलोस के तंतुओं (fibrils) के साथ भौतिक और रासायनिक बंध बनाते हैं तथा काष्ठ को मज़बूती तथा इसके विशेष गुण प्रदान करते हैं (चित्र 3.4)।

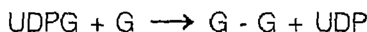
सेलुलोस को अम्ल द्वारा हाइड्रोलाइज़ करने पर केवल ग्लूकोज़ प्राप्त होता है यानी सेलुलोस ग्लूकोज़ का बहुलक है। सेलुलोस तथा ऐमिलोस में यह अंतर होता है कि सेलुलोस में ग्लूकोज़ के अणु आपस में बीटा-बंधों से जुड़े रहते हैं जबकि ऐमिलोस में यह अल्फा-बंध होते हैं। एक और अंतर यह है कि सेलुलोस के अणु लंबी शृंखलाओं के रूप में होते हैं, शाखाओं में विभाजित रूप में नहीं रहते। एक सूक्ष्मतंतु (microfibril) में कई सेलुलोस के अणु होते हैं। ग्लूकोज़ के हर अणु में, जो सेलुलोस के अणु की शृंखला बनाते हैं, तीन शेष-OH समूह होते हैं। ये एक व्यवस्थित रूप में अपनी ही शृंखला के पड़ोसी ग्लूकोज़ तथा पड़ोसी शृंखला के –OH समूहों से हाइड्रोजन बंध बनाते हैं। परस्पर बंधी हुई ये शृंखलाएं सेलुलोस के सूक्ष्मतंतुओं को मज़बूती प्रदान करती हैं। प्रयोगों द्वारा यह पाया गया है कि रुई से प्राप्त सेलुलोस का अणु लगभग 15,000 तथा लकड़ी के सेलुलोस का अणु लगभग 10,000 ग्लूकोज़ के अणुओं का बना होता है (चित्र 3.6)।

पौधे सेलुलोस का निर्माण कुछ उसी प्रकार करते हैं जैसे जिस क्रिया द्वारा ऐमिलोस बनता है। अंतर यह है कि ग्लूकोज़ का जो क्रियाशील न्यूक्लियोटाइड सेलुलोस के संश्लेषण में काम आता है वह है यूरिडीन डाइफॉस्फेट ग्लूकोज़ (यू.डी.पी.जी.)। यह खोज एल.एफ. लेलॉयर (L.F. Leloir) के अथक परिश्रम का परिणाम थी, जिसके लिए उन्हें सन् 1970 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। साइटोप्लाज़्म में यू.डी.पी.जी. दो स्रोतों से बनता है-



चित्र 3.5

यू.डी.पी.जी. प्लाज़्मा की झिल्ली (Plasma membrane) में जाकर सेलुलोस सिंथेटेज एंज़ाइम की उपस्थिति में ग्लूकोज़ से क्रिया करके डाइसैकेराइड बनाता है -

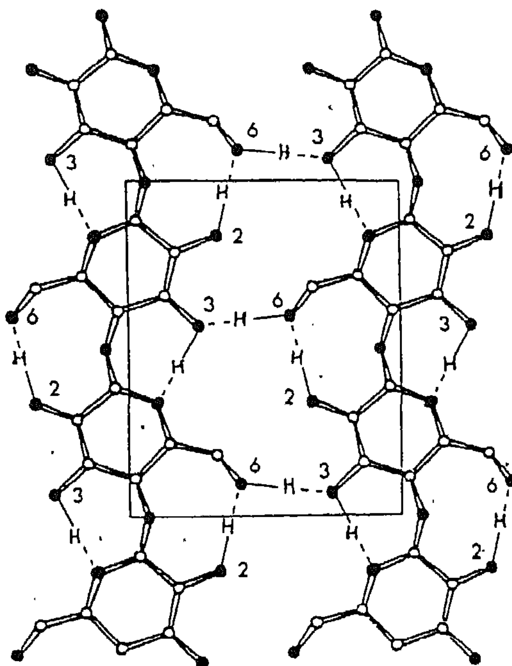


ग्लूकोज़ के ये दो अणु परस्पर $(1 \rightarrow 4)\beta$ बंधों से जुड़े रहते हैं।

यह क्रिया इसी प्रकार चलती रहती है और पॉलिसैकेराइड सेलुलोस की लंबी शृंखला बन जाती है। कई ऐसी शृंखलाएं आपस में हाइड्रोजन बंधों से जुड़कर सूक्ष्मतंतुओं का निर्माण करती हैं।

अन्य कार्बोहाइड्रेट

स्टार्च तथा सेलुलोस के अतिरिक्त पौधे और भी अनेक कार्बोहाइड्रेट पदार्थों का संश्लेषण करते हैं जो पौधों की कोशिकाओं की दीवारों में, पौधों से निकलने वाले गोंदों में , बीजों में संचित खाद्य सामग्री के रूप में या फिर सागरीय वनस्पतियों में पाए जाते हैं। पौधों के लिए इनकी



चित्र 3.6 : सेलुलोस में दो पड़ोसी श्रृंखलाओं के हाइड्रोजन बंध।
● ऑक्सीजन परमाणु, O कार्बन परमाणु, --- हाइड्रोजन बंध।
ऑक्सीजन के अणुओं को दी गई संख्याएं उनसे जुड़े ग्लूकोज़ के कार्बन की संख्याएं हैं।

निश्चित उपयोगिता होती है। कार्बोहाइड्रेट अनेक अन्य पदार्थों के साथ यौगिकों के रूप में भी पाए जाते हैं जिन्हें ग्लाइकोसाइड कहा जाता है। पौधों के लिए इनकी आवश्यकता पूर्ण रूप से तो नहीं आंकी जा सकती है, परंतु मनुष्य ने दीर्घ काल से कई ऐसे पदार्थों को औषधियों के रूप में सम्मान दिया है।

प्राकृतिक पॉलिसैकेराइड पदार्थों की संरचना उतनी जटिल नहीं है जितनी एक इतने बड़े आकार के अणु की हो सकती है। कारण यह है कि इनका संश्लेषण मोनोसैकेराइड से विशेष

एंज़ाइमों की उपस्थिति में होता है जो मोनोसैकेराइड अणुओं के संयोजन का मार्गदर्शन बड़ी विशिष्टता के साथ करते हैं। इस प्रकार पॉलिसैकेराइड में निम्न विशेषताएं लक्षित होती हैं -

- एक शृंखला प्रायः एक ही मोनोसैकेराइड अणुओं के संयोग से बनती है।
- मोनोसैकेराइड अणु परस्पर एक ही प्रकार के बंधों से जुड़े रहते हैं।
- C_1-OH जिन ग्लाइकोसाइड बंधों को बनाते हैं उनकी त्रिविम रचना (stereochemistry) भी सामान्यतः एक ही होती है।

इस प्रकार ऐमिलोस में सभी बंध जो ग्लूकोज़ के अणुओं को आपस में जोड़ते हैं, α-D-(1→4) बंध हैं तथा सेलुलोस में वह β-D-(1→4) बंध होते हैं।

- प्राकृतिक पॉलिसैकेराइड के अणुओं में जो मोनोसैकेराइड बहुलता से पाए जाते हैं वे केवल थोड़े ही हैं। जैसे 6 कार्बन वाले D-ग्लूकोज़, D-मैनोज़, D-फ्रक्टोज़ तथा D-गैलेक्टोज़ एवं 5 कार्बन वाले D-ज़ाइलोज़ तथा L-एरेबिनोज़।
- पॉलिसैकेराइड में यदि दो भिन्न मोनोसैकेराइड पाए जाते हों तथा इसकी शाखाओं वाली संरचना हो, तो प्रायः मुख्य शृंखला एक ही प्रकार के मोनोसैकेराइड से तथा शाखाएं दूसरे प्रकार के मोनोसैकेराइड से बनेंगी।

हेमीसेलुलोस सेल की दीवारों की सभी पर्तों में पाए जाते हैं। शूल्ज़े (Schulze) ने सन् 1891 में इनको यह नाम दिया। हेमीसेलुलोस 10% पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड में घुल जाते हैं। पौधों से उपलब्ध मुख्य हेमीसेलुलोस हैं ज़ाइलन, मैनन, गैलेक्टन तथा मिश्र हेमीसेलुलोस जिनमें एक से अधिक मोनोसैकेराइड पाए जाते हैं। इन पदार्थो में मोनोसैकेराइड अणुओं की कुल संख्या 200 से अधिक नहीं होती। कई हेमीसेलुलोसों को जल-अपघटित (hydrolyse) करने पर थोड़ी मात्रा में यूरोनिक अम्ल भी प्राप्त होते हैं।

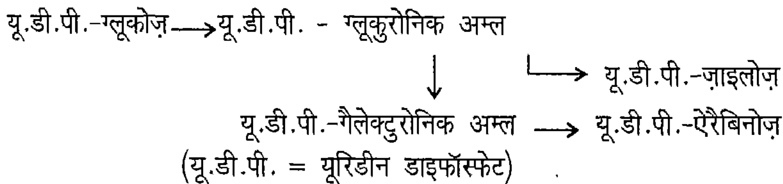
शुष्क प्रदेशों में पाए जाने वाले अनेक प्रजातियों के वृक्षों की छाल को यदि साधारण सी क्षति पहुंच जाए तो इस घाव को भरने तथा हानिकारक कीड़ों से बचाने के लिए उस स्थान से एक गाढ़ा द्रव निकलने लगता है जो सूख कर एक ठोस पदार्थ बन जाता है। साधारणतः इसे गोंद कहते हैं। गोंद हेमीसेलुलोस हैं और अपेक्षाकृत शुद्ध अवस्था में मिलते हैं। मनुष्य इन गोंदों से दीर्घकाल से परिचित रहा है और वह इनका उपयोग विशेष खाद्य पदार्थों तथा

औषधियों के रूप में करता आया है। गोंद के अणु अनेक शाखाओं वाले पॉलिसैकेराइड होते हैं जिनमें न्यूनाधिक मात्रा में यूरोनिक अम्ल, मुख्यतः गैलेक्टुरोनिक (galacturonic) तथा ग्लूकुरोनिक (glucuronic) अम्ल प्रायः कैल्सियम, मैग्नीशियम तथा पोटैशियम के लवणों के रूप में पाए जाते हैं। गोंद मुख्यतः एकेसिया (Acacia), स्टरक्यूलिया (Sterculia) तथा प्रूनस (Prunus) जाति के वृक्षों से प्राप्त किए गए हैं।

कुछ पौधों के बीजों से भी गोंद सा पदार्थ प्राप्त किया जाता है जो अनेक उद्योगों में उपयोग होता है। इनमें ग्वार का गोंद अधिक उल्लेखनीय है। ईसबगोल, इमली तथा अलसी के बीजों से भी पर्याप्त मात्रा में गोंद सा पदार्थ उपलब्ध किया जाता है।

अनेक प्रकार की समुद्री वनस्पति शैवाल (algae) तटीय समुद्रों में पाई जाती है जिनमें बहुत बड़ी मात्रा में (70% तक) पॉलिसैकेराइड होते हैं। रचना के आधार पर इनमें अत्यंत विभिन्नता होती है। वनस्पति के लिए यह पॉलिसैकेराइड पदार्थ संचित भोजन का भंडार है। ऐल्जिनिक अम्ल यूरोनिक अम्लों के बहुलक हैं। आगर (agar) मुख्य रूप से गैलेक्टोज़ से बना होता है। कैरेज़ीनन (carageenan) अधिकांशतः गैलेक्टोज़ से बना होता है जिसके कुछ (~10% तक) –OH समूह सल्फेटेड (-OSO_3H) रूप में रहते हैं। ऐल्जिनिक अम्ल, कैरेजीनन तथा अनेक अन्य अम्लीय पॉलिसैकेराइड जानवरों की पाचन प्रणाली से बिना पचे निकल जाते हैं। ऐल्जिनिक अम्ल में स्ट्रॉन्शियम (strontium) से संयोग कर उसे बांध कर रखने की अपूर्व क्षमता है।

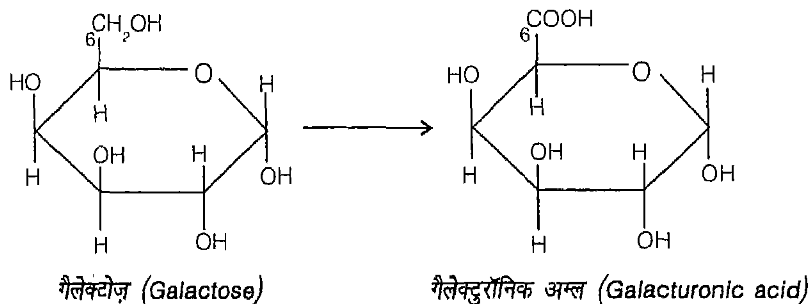
पौधों में ज़ाइलोज़ तथा ऐरैबिनोज़ की उत्पत्ति के लिए 6 कार्बन वाली ग्लूकोज़ ही उत्तरदायी है। संक्षेप में इस क्रिया को निम्न समीकरणों से दर्शाया जा सकता है –



ये यू.डी.पी. पदार्थ अधिक ऊर्जा वाले बंधों से युक्त होते हैं तथा उसी क्रिया से अपने विशिष्ट पॉलिसैकेराइड बनाते हैं जिस प्रकार ए.डी.पी.–ग्लूकोज़ से ऐमिलोस का निर्माण होता है।

पेक्टिन

यूरोनिक अम्ल वह पदार्थ हैं जो मोनोसैकेराइड अणु के C_6 का ऑक्सीकरण करने पर बनते हैं। उनके नाम भी मोनोसैकेराइड के नाम से ही दिए गए हैं जैसे –



गैलेक्टोज़ (Galactose) *गैलेक्टुरॉनिक अम्ल (Galacturonic acid)*

चित्र 3.7

इसी आधार पर ग्लूकोज़ से प्राप्त अम्ल ग्लूकुरोनिक अम्ल कहा जाएगा। गैलेक्टुरॉनिक अम्ल से निर्मित बहुलक को पॉलिगैलेक्टुरोनिक अम्ल कहेंगे। इन बहुलकों का सामूहिक नाम पेक्टिन (pectin) है। पेक्टिन के कुछ कार्बोक्सल समूह (-COOH) मेथिल एस्टर के रूप में ($-COOCH_3$) रहते हैं। गैलेक्टुरोनिक अम्ल से बना बहुलक सबसे अधिक पाई जाने वाली पेक्टिन है। एस्टर समूह का प्रतिशत 0 से 85 तक हो सकता है। कई –COOH समूह कैल्सियम लवणों के रूप में उपस्थित रहते हैं। पेक्टिन जल में कोलॉइडी विलयन (colloidal solution) बनाते हैं।

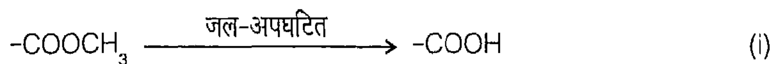
पौधों में पेक्टिन का संश्लेषण भी यू.डी.पी.-गैलेक्टुरॉनिक (UDP-galacturonic) अम्ल के माध्यम से ही होता है। -COOH समूह से एस्टर बनने की क्रिया संभवतः ऐमीनो अम्ल मिथायोनीन द्वारा संपन्न होती है।

पौधों में पेक्टिन का मुख्य कार्य सेलुलोस के तंतुओं को बांधना है, कुछ उसी प्रकार जैसे ईंटों को आपस में जोड़ने के लिए सीमेंट का उपयोग किया जाता है। फलस्वरूप लकड़ी में मज़बूती आ जाती है। यह स्पष्ट है कि कार्बोक्सल समूह (-COOH) में हाइड्रोजन तथा अन्य बंध बनाने की क्षमता मेथिल एस्टर ($-COOCH_3$) की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। इसलिए कम एस्टर तथा अधिक कार्बोक्सल वाले पेक्टिन सेलुलोस के तंतुओं को अधिक मज़बूती से

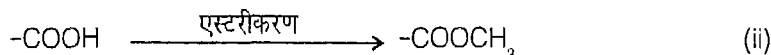


बांध सकते हैं। पतझड़ में पेड़ों से पत्तियां पृथक होने लगती हैं या फल पकने पर गिर जाते हैं। इस क्रिया में यह समझा जाता है कि संबंधित पेक्टिन में कुछ अतिरिक्त -COOH समूह $-COOCH_3$ समूहों में परिवर्तित हो जाते हैं जिससे सेलुलोस तथा पेक्टिन के संयोग से बने तंतु कमज़ोर हो जाते हैं।

वास्तव में, पेक्टिन मेथिल एस्टरेज़ एन्ज़ाइम जो मेथिल एस्टर को जल-अपघटित करते हैं (क्रिया i), एंज़ाइम जो मेथिल एस्टर बनाने में सहायता करते हैं (क्रिया ii) तथा विबहुलीकारक



$$-COOCH_3 \xrightarrow{\text{जल-अपघटित}} -COOH \qquad \text{(i)}$$



$$-COOH \xrightarrow{\text{एस्टरीकरण}} -COOCH_3 \qquad \text{(ii)}$$

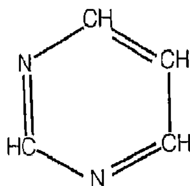
(depolymerizing) एंज़ाइम जो पेक्टिन के अणुओं को हाइड्रोलाइज़ कर छोटे अणुओं में परिवर्तित करते हैं, तीनों एक पारस्परिक गतिक संतुलन (dynamic equilibrium) से जुड़े रहते हैं। इन एंज़ाइमों की सक्रियता (activity) समय और आवश्यकतानुसार बदलती रहती है। फलों के पकने की क्रिया में कुछ अंशों तक क्रिया (i) से पेक्टिन अधिक घुलनशील रूप में आ जाती हैं तथा विबहुलकन एंज़ाइम (depolymerizing enzyme) की क्रिया से छोटे अणुओं में टूट जाती हैं जिससे फल नरम हो जाते हैं।

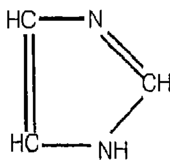
पेक्टिन का विशेष गुण है – इसकी जेली (jelly) बनाने की क्षमता। वह फल जिनमें पर्याप्त मात्रा में पेक्टिन पाई जाती है, जेली के रूप में संरक्षित किए जाते हैं। सेब, खुबानी, प्लम, आम, अमरूद तथा साइट्रस फल, सभी पेक्टिन से भरपूर होते हैं। जेली बनाने के लिए उच्च अणुभार तथा कम मेथिल एस्टर वाली पेक्टिन की आवश्यकता होती है। कम मेथिल एस्टर वाली पेक्टिन, शक्कर तथा फलों के अन्य घुलनशील पदार्थों की कम मात्रा और अम्लीयता के अधिक विस्तृत परिसर (range) में भी जेली बना लेती हैं। इसके विपरीत अधिक मेथिल एस्टर वाली पेक्टिन से जेली बनाने के लिए कम से कम 45% शक्कर तथा अम्लीयता का pH 3.5 - 4.0 होना आवश्यक है। फलों से उपलब्ध पेक्टिन का उपयोग अन्य खाद्य सामग्रियों के बनाने में भी होता है।

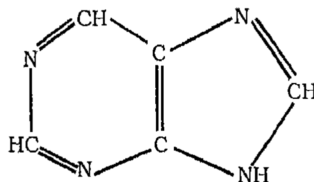
4

पिरिमिडीन, प्यूरीन तथा इनसे निर्मित रसायन

पिरिमिडीन (I) 4 कार्बन तथा 2 नाइट्रोजन के परमाणुओं से निर्मित एक वलय (ring) होती है। इमिडैज़ोल (imidazole) (II) 3 कार्बन तथा 2 नाइट्रोजन के परमाणुओं से युक्त अन्य वलय है। इन दोनों वलयों से मिलकर प्यूरीन (III) का अणु बनता है —







(I) *पिरिमिडीन* *(II)* *इमिडैज़ोल* *(III)* *प्यूरीन*

चित्र 4.1

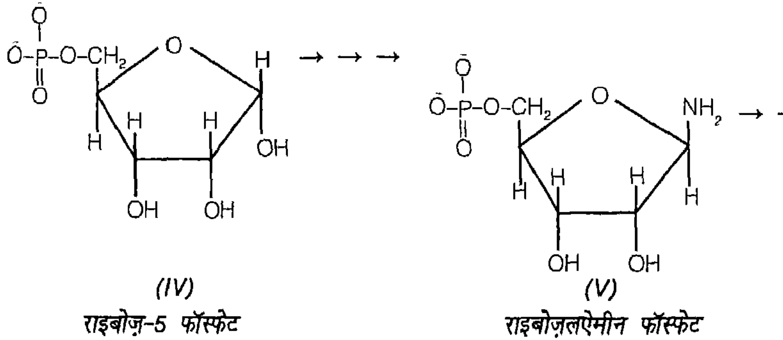
जैव रासायनिक क्रियाओं में ऊर्जा के रूपांतरण (transformation) के लिए उत्तरदायी अनेक रसायन जैसे ऐडेनोसिन डाइ तथा ट्राइफॉस्फेट (adenosine di and triphosphate) ए.डी.पी. तथा ए.टी.पी., यूरिडीन डाइ तथा ट्राइफॉस्फेट (uridine di and triphosphate), यू.डी.पी. तथा यू.टी.पी., ग्वानोसिन डाइ तथा ट्राइफॉस्फेट (guanosine di and

triphosphate), जी.डी.पी. (GDP) तथा जी.टी.पी. (GTP), इत्यादि इसी पिरिमीडीन तथा प्यूरीन के संरचनात्मक आधार पर बने हैं। इसी आधार पर बने अनेक रसायन जैवरासायनिक क्रियाओं के संचालन के लिए कोएंज़ाइम का कार्य करते हैं, जैसे निकोटिनेमाइड ऐडेनीन डाइन्यूक्लीओटाइड (nicotinamide adenine dinucleotide), एन.ए.डी., फ्लैविन ऐडेनीन डाइन्यूक्लीओटाइड (flavin adenine dinucleotide), एफ.ए.डी., कोएंज़ाइम ए (Coenzyme A) इत्यादि। न्यूक्लीइक अम्ल (डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए.) विशाल आकारों वाले बहुलक हैं, प्यूरीन तथा पिरिमिडीन से निर्मित पदार्थ जिनके महत्वपूर्ण अंग हैं तथा जिनके माध्यम से जैवरासायनिक विशिष्टता (specificity) का पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षण एवं संचालन होता है।

प्रायः सभी पौधों में प्यूरीन पर आधारित अनेक पदार्थ अल्प मात्रा में पाए जाते हैं। यह माना गया है कि यह अधिकतर न्यूक्लीइक अम्लों के अपचयन उत्पाद (catabolic products) हैं। कुछ पौधों में यह पदार्थ पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहते हैं। चाय और कॉफी के पौधों में कैफीन (caffeine), कोको में थियोब्रोमीन (theobromine) इत्यादि इसके सुपरिचित उदाहरण हैं। कवक (fungi) की कई प्रजातियां कुछ ऐसे पदार्थों का निर्माण करती हैं जिनका संरचनात्मक आधार प्यूरीन या पिरिमिडीन हैं तथा जो मनुष्य के लिए एंटीबायोटिक्स के रूप में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। संभवतः कवक को भी बैक्टीरिया के आक्रमण से बचाने के लिए इनका निर्माण हुआ हो। प्यूरोमाइसिन (puromycin) इनका एक उल्लेखनीय उदाहरण है जो स्ट्रेप्टोमाइसीज ऐलवोनीजिर (Streptomyces alboniger) से प्राप्त किया गया है। काइनेटिन (kinetin) तथा ज़िआटीन (zeatin) भी प्यूरीन के व्युत्पन्न (derivative) हैं जिनका संबंध कोशिकाओं के विभाजन तथा वृद्धि (growth) की नियंत्रण क्रियाओं से है।

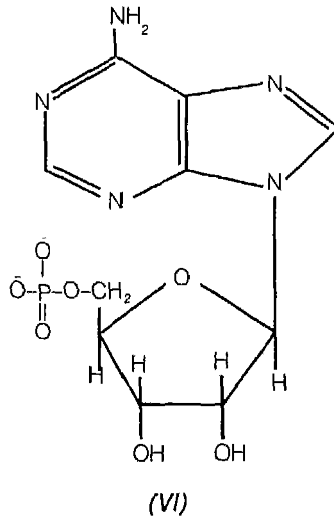
आरंभ में साधारणतः यह सोचा जाता था कि न्यूक्लीइक अम्लों के प्यूरीन अंग का निर्माण, राइबोज़ (ribose) का निर्माण तथा फॉस्फेट एस्टर अंगों का निर्माण स्वतंत्र रूप से होता है, परंतु रेडियोधर्मी कार्बन (^{14}C) से युक्त रसायनों की सहायता से अत्यंत निपुणता से किए गए प्रयोगों द्वारा यह धारणा, असत्य सिद्ध हुई। पौधों में सर्वप्रथम राइबोज़-5-फॉस्फेट(IV) के रूप में ही राइबोज़ का संश्लेषण होता है जो जीवरासायनिक क्रियाओं के कई चरणों के उपरांत राइबोज़लऐमीन फॉस्फेट (V) में बदल जाता है। V में उपस्थित नाइट्रोजन के ही मूल

आधार पर जटिल क्रियाओं द्वारा प्यूरीन ऐडेनीन का संश्लेषण होकर ऐडेनोसिन मोनोफॉस्फेट (VI) बनता है। प्यूरीन का कौन सा कार्बन तथा कौन सी नाइट्रोजन किस जीवरसायन की देन है,



(IV)
राइबोज़-5 फॉस्फेट

(V)
राइबोज़लऐमीन फॉस्फेट



(VI)
ऐडेनोसिन मोनोफॉस्फेट

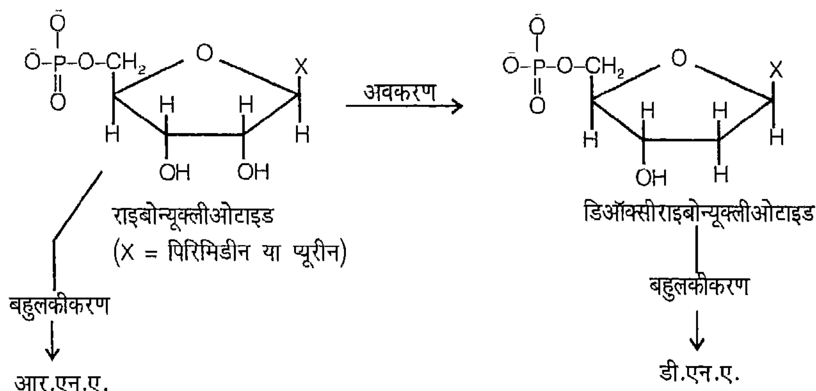
चित्र 4.2

यह सब प्रयोगों द्वारा निश्चित रूप से जान लिया गया है। यह पाया गया है कि फॉर्मेट ($HCOO^-$), कार्बनडाइऑक्साइड (CO_2), ग्लाइसीन (NH_2-CH_2-COOH), ऐस्पार्टिक अम्ल ($HOOC-CH_2-CH(NH_2)-COOH$) तथा ग्लूटैमीन ($H_2NOC-CH_2-CH_2-CH(NH_2)-COOH$) ही प्रारंभिक रसायन पदार्थों के रूप में इनके स्रोत हैं।

पौधों में पिरिमिडीन वाले जैव रसायनों का संश्लेषण एक स्वतंत्र क्रिया द्वारा होता है। इसमें अमोनिया, कार्बनडाइऑक्साइड तथा ऐस्पार्टिक अम्ल की मुख्य भूमिका है जिसके फलस्वरूप पहले पिरिमिडीन बनते हैं जो बाद में राइबोज़ से संयोग करते हैं।

कार्बोहाइड्रेटों के संश्लेषण में यू.डी.पी.जी., यू.डी.पी.-गैलेक्टुरोनिक अम्ल इत्यादि की भूमिका का उल्लेख पृष्ठ 25-26 में किया जा चुका है।

यह जानने योग्य तथ्य है कि राइबोज़ से बने राइबोन्यूक्लीओटाइडों के जैवरासायनिक अवकरण (reduction) के ही माध्यम से डिऑक्सीराइबोज़ से बने डिऑक्सीराइबोन्यूक्लीओटाइड बनते हैं—



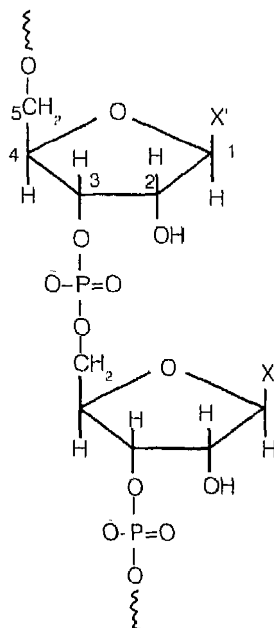
चित्र 4.3

जैसा उक्त संरचनाओं से स्पष्ट है कि डिऑक्सीराइबोन्यूक्लीओटाइड में तत्संबंधी राइबोन्यूक्लीओटाइड की अपेक्षा एक ऑक्सीजन का परमाणु कम है (डिऑक्सी = एक

ऑक्सीजन रहित)। आर.एन.ए. यानी राइबोन्यूक्लीइक अम्ल (ribonucleic acid) राइबोन्यूक्लीओटाइडों के बहुलक हैं तथा डी.एन.ए. यानी डिऑक्सीराइबोन्यूक्लीइक अम्ल (deoxyribonucleic acid), डिऑक्सीराइबोन्यूक्लीओटाइडों के बहुलक हैं।

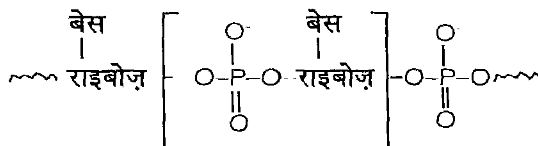
अब प्रश्न यह उठता है कि बहुत से राइबोन्यूक्लीओटाइड या डिऑक्सीराइबोन्यूक्लीओटाइड की इकाइयां आपस में किस प्रकार जुड़ी रहती हैं ?

रसायन शास्त्र की भाषा में हम कहेंगे कि इनको जोड़ने वाला बंध फॉस्फोडाइएस्टर बंध है यानी फॉस्फोरिक अम्ल दो एस्टर बंधों द्वारा इन्हें आपस में जोड़ता है। जैसा निम्न संरचना से स्पष्ट है फॉस्फोरिक अम्ल एक इकाई के C-5 में उपस्थित -OH को दूसरी इकाई के C-3 में उपस्थित -OH से परस्पर जोड़ता है –



चित्र 4.4 : राइबोन्यूक्लीइक अम्ल (आर.एन.ए.) का एक अंश।

यह क्रिया इसी प्रकार चलती रहती है और आर.एन.ए. का विशाल अणु बनता है। आर.एन.ए. के अणु को निम्न शृंखला द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

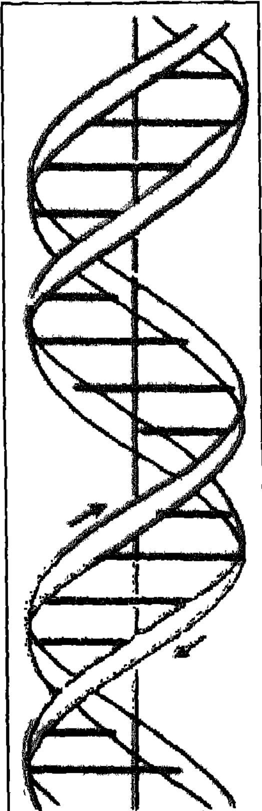


इसकी एक इकाई फॉस्फेट, राइबोज़ तथा एक बेस से बनी है जिसे एक न्यूक्लीओटाइड कहते हैं। यह एक कोष्ठ के भीतर दिखाई गई है।

डी.एन.ए. के अणु में C-2 में –OH नहीं होता। विभिन्न आर.एन.ए. या डी.एन.ए. की संरचना में यही अंतर है कि उनके अणु में कहां, कौन सी पिरिमिडीन या प्यूरीन (X) है। जहां तक पिरिमिडीन या प्यूरीन बेसों (bases) का संबंध है, डी.एन.ए. में जो बेस पाए जाते हैं वह है, साइटोसिन (cytosine या C), ग्वानीन (guanine या G), ऐडेनोसिन (adenosine या A) तथा थायमीन (thymine या T)। आर.एन.ए. में साइटोसिन, ग्वानीन, ऐडेनोसिन तथा यूरेसिल (uracil या U) बेस पाए जाते हैं। पौधों में डी.एन.ए. क्लोरोप्लास्ट (chloroplast), माइटोकॉन्ड्रिया (mitochondria) तथा कोशिकाओं के नाभिक (nucleus) में पाया जाता है। डी.एन.ए. के अणु बहुत बड़े आकार के होते हैं। इनका अणुभार कई लाख तक हो सकता है। भले ही इनकी संरचना एक नियमबद्ध रूप में होती है तथा इनकी संरचना के अध्ययन में यही ज्ञात करना है कि भिन्न-भिन्न बेस किस क्रम से जुड़े हुए हैं, यह एक अत्यंत कठिन कार्य है। इनकी विशालता को देखते हुए वैज्ञानिकों ने सन् 1968 में यह दावा किया था कि बीसवीं सदी में तो यह काम हो सकना असंभव है। परंतु केवल 9 वर्ष बाद ही एफ. सेंगर (F. Sanger) ने असंभव को संभव कर दिखाया और एक वाइरस के डी.एन.ए. के 5386 बेसों का क्रम स्पष्ट कर दिया। इस महान वैज्ञानिक को दूसरी बार नोबेल पुरस्कार से विभूषित किया गया। पहली बार इन्हें नोबेल पुरस्कार इंसुलिन (insulin) नामक हॉर्मोन के अणु में ऐमीनो अम्लों के संपूर्ण क्रम को ज्ञात करने के लिए सन् 1958 में दिया गया था।

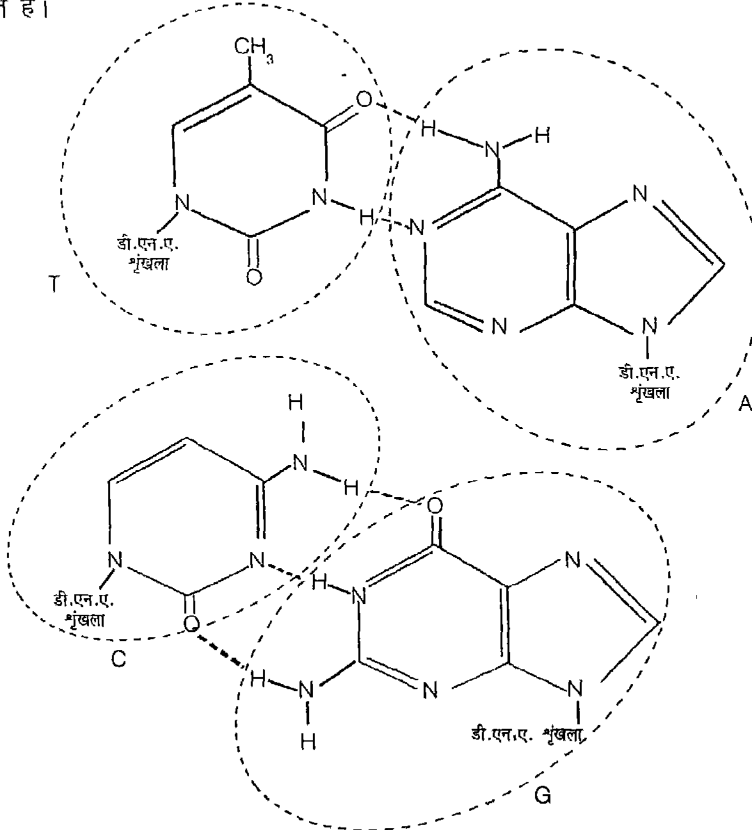
प्रश्न यह उठता है कि डी.एन.ए. का त्रिविमीय आकार कैसा है ? इसका उत्तर दिया जे. डी. वाटसन (J.D. Watson) तथा एफ.एच.सी. क्रिक (F.H.C. Crick) ने सन् 1953 में

और यह था द्विकुंडलीय (double helix) जो डी.एन.ए. के संबंध में ज्ञात सभी तथ्यों की व्याख्या कर सकता है। सन् 1962 में इन वैज्ञानिकों को इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। चित्र 4.5 में डी.एन.ए. के इस आकार को रेखाचित्र के रूप में दर्शाया गया है —



चित्र 4.5 : डी.एन.ए. के द्विकुंडलीय (double helix) का रेखाचित्र।
शृंखलाएं (रिबन) अलग-अलग कुंडली बनाती हैं जो परस्पर लिपटी हुई स्थिति में रहती हैं। हर रिबन (शृंखला) का एक तल हल्का रंगा गया है जिससे इसके घुमाव की दिशा स्पष्ट हो सके।

चित्र 4.5 में डी.एन.ए. की शृंखला की दो कुंडलियां (helix) चपटे रिबन (ribbon) के रूप में दिखाई गई हैं जो एक दूसरे से लिपटी हुई स्थिति में हैं परंतु ये आपस में केवल हाइड्रोजन बंधों से जुड़ी हैं। खड़ी मोटी लाइन द्विकुंडलीय का अक्ष (axis) है। बेस इन रिबन में अंदर यानी अक्ष की ओर हैं जिनके तल अक्ष से समलंब (perpendicular) स्थिति में होते हैं।



चित्र 4.6 : डी.एन.ए. शृंखलाओं के अनुप्रस्थ परिच्छेद (cross-section) में A-T तथा C-G जोड़ों में हाइड्रोजन बंध।

हम देख चुके हैं कि यदि डी.एन.ए. की एक शृंखला में क्रम से आगे बढ़ते जाएं तो पहले डिऑक्सीन्यूक्लीओटाइड का 3-OH दूसरे डिऑक्सीन्यूक्लीओटाइड के 5-OH से फॉस्फोडाइएस्टर बंध बनाता है। इस दिशा क्रम को चित्र 4.5 में तीर के द्वारा दिखाया गया है। चित्र से यह स्पष्ट है कि द्विकुंडलीय (double helix) की दो शृंखलाएं विपरीत दिशाओं में बढ़ रही हैं।

एक शृंखला के बेस A के अणु का तल तथा दूसरी शृंखला के बेस T के अणु का तल एक ही समतंल में स्थित हैं। एक जोड़े में बेस A तथा T आपस में हाइड्रोजन बंधों से जुड़े रहते हैं और यही स्थिति बेस C तथा बेस G की भी है (चित्र 4.6)। डी.एन.ए. की दोनों शृंखलाओं में बेस इस क्रम से उपस्थित रहते हैं कि एक शृंखला का हर एक बेस दूसरी शृंखला के तद्नुरूपी बेस से हाइड्रोजन बंध बनाता है।

चित्र 4.5 के क्षैतिज दंड (horizontal rods) बेस के जोड़ों के समतल तथा परस्पर हाइड्रोजन बंधों को दर्शाते हैं। इस प्रकार हर शृंखला में बेस का क्रम सुनिश्चित रहता है और यह बहुसंख्य हाइड्रोजन बंध द्विकुंडलीय के आकार को स्थायित्व देते हैं।

डी.एन.ए. के अणु तथा आनुवंशिकता (heridity) का परस्पर गहरा संबंध है। डी.एन.ए. के अंदर रासायनिक अणुओं के रूप में उस सूचना का भंडार निहित है जिसके आधार पर यह जीव विशेष के लिए उन रसायनों के निर्माण की व्यवस्था करता है जो उसके जीवन का अभिन्न अंग हैं। हम जानते हैं कि समस्त जैवरासायनिक क्रियाओं के लिए विशेष एंज़ाइमों की आवश्यकता होती है जिनका उत्पादन डी.एन.ए. के अणुओं के द्वारा ही होता है। यदि हम डी.एन.ए. के कार्यों की चर्चा करें तो ये तीन प्रकार के होते हैं -

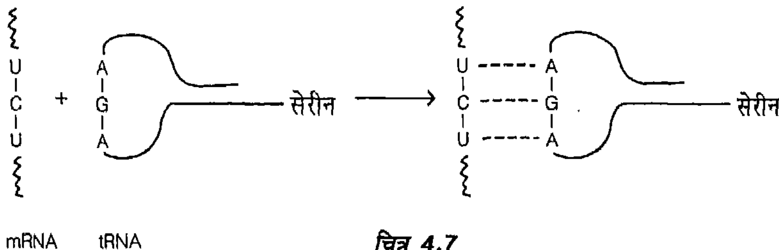
- प्रतिकृति (Replication) वह क्रिया है जिसके आधार पर डी.एन.ए. का एक अणु बिल्कुल अपनी ही तरह के अणु का निर्माण कर सकता है। क्रिक (Crick) के शब्दों में डी.एन.ए. के अणु की दो शृंखलाएं हथेली तथा दस्ताने की भांति परस्पर संलग्न (fit) हैं। पहले यह पृथक हो जाती हैं। फिर हथेली के ऊपर एक नए दस्ताने का निर्माण होता है तथा दस्ताने के अंदर एक नया हाथ बन जाता है। यह नवनिर्मित दस्ताना तथा हाथ मिलकर दस्ताने वाला नया हाथ यानी डी.एन.ए. का एक और अणु बन जाता है।
- अनुलेखन (Transcription) वह क्रिया है जिसके द्वारा डी.एन.ए. का अणु उन आर.एन.ए. के अणुओं का निर्माण करता है जो प्रोटीन या एंज़ाइम के बनाने के लिए आवश्यक हैं।

- अनुवाद (Translation) वह क्रिया है जिसके माध्यम से प्रेषक आर.एन.ए. (messenger RNA या mRNA) तथा ट्रांसफर आर.एन.ए. (tRNA या transfer RNA) के सहयोग से एंज़ाइम तथा अन्य प्रोटीनों का निर्माण होता है।

यह प्रकृति का विचित्र खेल है कि जहां एंज़ाइम, डी.एन.ए. के निर्देश पर बनते हैं, वहीं डी.एन.ए. के निर्माण और कार्य संपादन के लिए स्वयं एंज़ाइमों की आवश्यकता होती है।

mRNA में चार बेस G, C, A तथा U होते हैं। इनमें से तीन बेसों के विशेष क्रम में ऐमीनो अम्लों में से एक ऐमीनो अम्ल के लिए संदेश निहित होता है। इस तिकड़ी को कोडॉन (codon) कहते हैं। उदाहरण के लिए कोडॉन यू.यू.यू. फेनिलएलेनीन के लिए, जी.जी.जी. ग्लाइसीन के लिए तथा यू.सी.यू. सेरीन के लिए संकेत हैं।

प्रत्येक ऐमीनो अम्ल के लिए एक पृथक tRNA होता है जिसके अणु में एक विशेष स्थान पर बेसों की एक अन्य तिकड़ी होती है जो उस ऐमीनो अम्ल के कोडॉन की पूरक तिकड़ी होती है और जिसे एंटीकोडॉन (anticodon) कहते हैं। उदाहरणार्थ सेरीन (serine) के tRNA में ए.जी.ए. एंटीकोडॉन होता है जो यू.सी.यू. का पूरक है। (जी-सी तथा ए-यू पूरक जोड़े हैं।) सारांश यह हुआ कि यदि प्रोटीन के संश्लेषण हेतु सेरीन को बुलाना हो तो mRNA में यू.सी.यू. कोडॉन होगा। सेरीन का tRNA जिसमें ए.जी.ए. एंटीकोडॉन होगा, सेरीन को पकड़ कर लाएगा और स्वयं पूरक बेसों के माध्यम से mRNA से हाइड्रोजन बंधों के द्वारा जुड़ जाएगा।

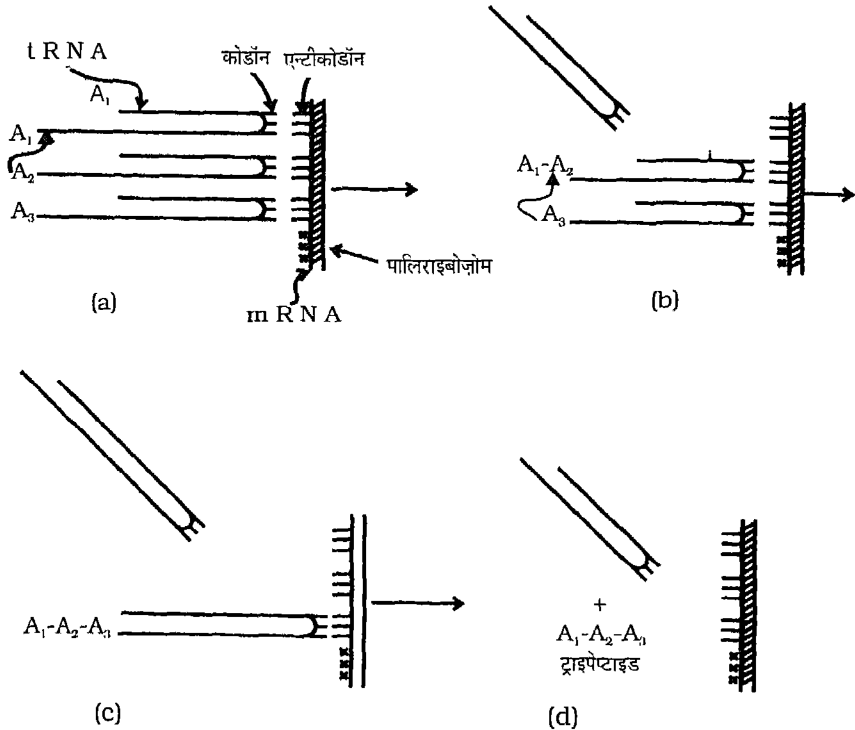


चित्र 4.7

इन कोडॉनों के रहस्य का उद्‌घाटन, भारतीय मूल के वैज्ञानिक एच.जी. खुराना (H.G.

Khorana) और आर.डब्ल्यू. होले (R.W. Holley) तथा एम. निरेनबर्ग (M. Nirenberg) के सतत प्रयासों का फल है, जिसके लिए उन्हें सम्मिलित रूप से सन् 1968 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

चित्र 4.8 द्वारा हम देखेंगे कि तीन ऐमीनो अम्लों A_1, A_2 तथा A_3 से बना एक छोटा सा ट्राइपेप्टाइड A_1-A_2-A_3 किस प्रकार निर्मित होता है। mRNA की शृंखला में चार कोडॉन दर्शाए गए हैं। पहले तीनों क्रमशः ऐमीनो अम्लों A_1, A_2 तथा A_3 के लिए हैं। सबसे नीचे जो कोडॉन xxx है वह संश्लेषित ट्राइपेप्टाइड को मुक्त करने का संदेश देता है, इसे मुक्तक कोडॉन कहते हैं।



चित्र 4.8 : तीन ऐमीनो अम्लों से निर्मित ट्राइपेप्टाइड का जैव-संश्लेषण (सैद्धांतिक चित्रण)।

सर्वप्रथम ऐमीनो अम्ल, A_1, A_2 तथा A_3 अपने कार्बोक्सल समूहों द्वारा अपने-अपने tRNA से संयोग करते हैं। इन tRNA के एंटीकोडॉन mRNA के कोडॉनों से निर्देशित हो कर अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान पर जुड़ जाते हैं (a) अब A_2 न्यूक्लिओफिलिक क्रिया द्वारा A_1 के कार्बोक्सल समूह से क्रिया कर A_2 के tRNA से जुड़ा हुआ डाइपेप्टाइड A_1-A_2 बनाता है तथा A_1 से संबंधित tRNA मुक्त हो कर निकल जाता है (b) इसी प्रकार अगले चरण में A_1-A_2, tRNA से युक्त A_3 से जुड़ जाता है और दूसरा मुक्त tRNA पृथक हो जाता है (c)। mRNA में अगला कोडॉन किसी ऐमीनो अम्ल का कोडॉन नहीं है बल्कि ऐमीनो अम्लों की शृंखला को समाप्त कर मुक्त करने का आदेश देता है (d)। इस प्रकार ट्राइपेप्टाइड संश्लेषित हो जाता है। ये सब क्रियाएं अत्यंत तीव्र गति से होती हैं। हीमोग्लोबिन की अल्फा-शृंखला एक प्रोटीन है जिसके 141 ऐमीनो अम्लों को जोड़ने में केवल 2.5 मिनट लगते हैं। है न चौंकाने वाली बात ! और इस संपूर्ण क्रिया का निर्देशक है तत्संबंधी डी.एन.ए.।

संश्लेषित पेप्टाइडों में इसके बाद अनेक द्वितीयक परिवर्तन होते हैं, जैसे ऐमीनो अम्ल सिस्टीन (cysteine) के ऑक्सीकरण से डाइसल्फाइड बंध बनते हैं, एंज़ाइम की क्रिया द्वारा पेप्टाइड का एक भाग अलग हो जाता है, पेप्टाइड के विशेष ऐमीनो अम्लों का फॉस्फोरीकरण (phosphorylation) हो जाता है, इत्यादि। इन सब परिवर्तनों का उद्देश्य होता है पेप्टाइड को विशिष्ट त्रिविमीय (three-dimensional) आकार में ढालना जिससे वह अपना निर्दिष्ट कार्य कर सके।

ऐमीनो अम्लों का संश्लेषण

अब हम देखेंगे कि ऐमीनो अम्ल, जो जीवजगत के सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं आधारभूत पदार्थ हैं, प्रकाश संश्लेषण क्रिया के ही उत्पाद हैं। मनुष्य के शरीर में केवल कुछ ही ऐमीनो अम्लों के संश्लेषण की क्षमता है। शेष आवश्यक ऐमीनो अम्लों के लिए उसे पौधों पर निर्भर रहना पड़ता है। पौधे तथा अनेक जीवाणु प्रोटीनों में पाए जाने वाले सभी ऐमीनो अम्लों को

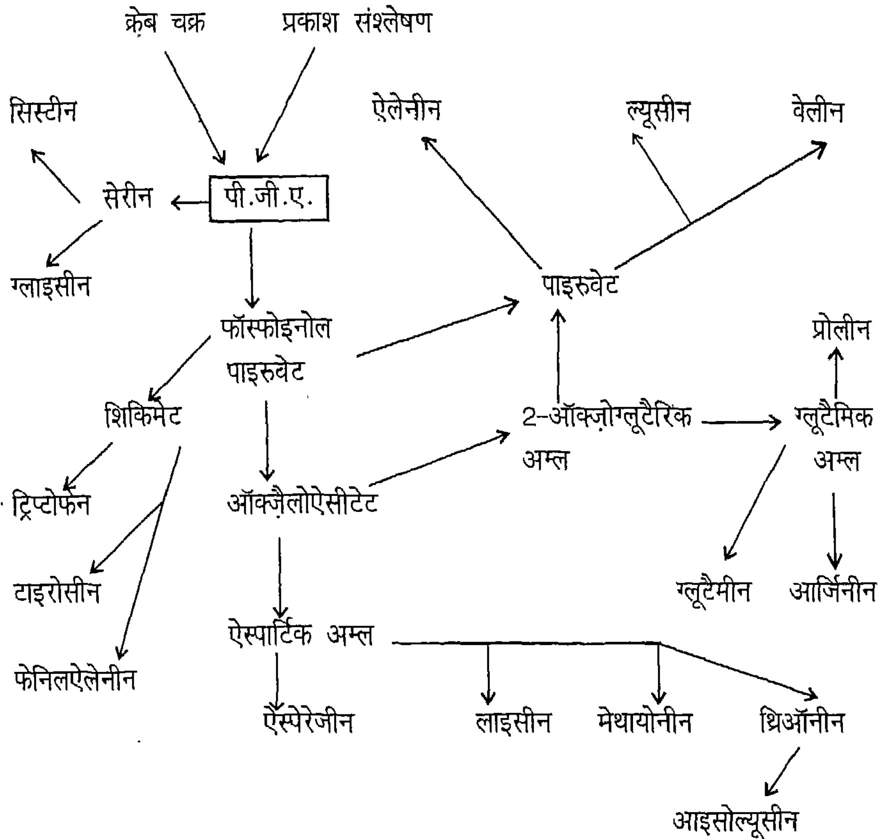
संश्लेषित करने में सक्षम हैं। ऐमीनो अम्ल ही जीवजगत में प्रोटीन तथा एंज़ाइमों की सृष्टि करते हैं तथा एंज़ाइम ही सभी जैवरासायनिक क्रियाओं को अपूर्व दक्षता से संपादित करते हैं। इस दृष्टि से भी यदि प्रकाश संश्लेषण को प्रकृति की सबसे अधिक चमत्कारी क्रिया कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्रोटीनों में पाए जाने वाले बीस ऐमीनो अम्ल तो सर्वत्र विद्यमान हैं ही, इसके अतिरिक्त अनेक असाधारण ऐमीनो अम्ल, कुछ विशेष पौधों तथा जीवाणुओं से प्राप्त किए गए हैं। प्रोटीनों में साधारणतः कम मात्रा में पाए जाने वाले ऐमीनो अम्लों की मात्रा भी विशेष परिस्थितियों या विशेष पौधों में अधिक हो सकती है। पकते हुए केले के फलों में अधिक हिस्टिडीन, सेब के पौधों में अधिक आर्जिनीन, कैरेजीना (caragena) की लकड़ी में तथा जल की कमी की अवस्था में अनेक पौधों में अधिक प्रोलीन का पाया जाना इसके उदाहरण हैं।

जब $^{14}CO_2$ की उपस्थिति में क्लोरेला शैवाल में प्रकाश संश्लेषण किया गया तो बहुत थोड़े समय में ही ^{14}C युक्त कई अम्लों की उपस्थिति स्पष्ट हो गई। ये ऐमीनो अम्ल थे ऐलेनीन, सेरीन, ग्लाइसीन, ऐसपार्टिक तथा ग्लूटैमिक अम्ल। यह भी देखा गया कि $^{14}CO_2$ का लगभग 30% इन ऐमीनो अम्लों के निर्माण में काम आया। इन परिणामों के आधार पर यह तथ्य सामने आता है कि ऐमीनो अम्लों का निर्माण CO_2 के अवकरण की क्रिया के दौरान बनने वाले आरंभिक रसायनों द्वारा संपन्न होने लगता है। यह अनुमान भी उचित है कि उपरोक्त पांच ऐमीनो अम्ल ही शेष ऐमीनो अम्लों की रचना करते हैं।

फोटोइलेक्ट्रॉन ट्रांसपोर्ट द्वारा उपलब्ध एन.ए.डी.पी.एच. तथा ए.टी.पी. (NADPH तथा ATP) के माध्यम से अथवा पौधों में होने वाली श्वसन की क्रिया द्वारा नाइट्रेट का अवकरण होकर अमोनियम आयन बनते हैं और यही ऐमीनो अम्लों के निर्माण के लिए नाइट्रोजन की आपूर्ति करते हैं।

हिस्टिडीन को छोड़कर सभी साधारण ऐमीनो अम्लों के जनक पदार्थ एक ही हैं। देखा जाए तो प्रकाश संश्लेषण का उत्पाद फॉस्फोग्लिसरिक अम्ल (पी.जी.ए., चित्र 4.9) अनेक ऐमीनो अम्लों का निर्माण करता है। इसके अतिरिक्त पी.जी.ए. क्रेब चक्र (Kreb cycle) से भी उपलब्ध होता है।



चित्र 4.9 : पौधों में ऐमीनो अम्लों के संश्लेषण का एक रेखाचित्र।

अमोनिया, एन.ए.डी.पी.एच. तथा 2-ऑक्ज़ोग्लूटैरिक अम्ल की क्रिया से ग्लूटैमिक अम्ल बनता है। केवल इस ऐमीनो अम्ल के बनने में नाइट्रोजन अमोनिया से प्राप्त होती है। शेष सभी ऐमीनो अम्ल भी 2-ऑक्ज़ो अम्लों से बनते हैं परंतु इन्हें नाइट्रोजन ग्लूटैमिक अम्ल से मिलती है। यह क्रिया एंज़ाइम ऐमीनोट्रांसफरेज तथा विटामिन B_6 की सहायता से संपन्न होती है। ट्रिप्टोफेन, टाइरोसीन तथा फेनिलऐलेनीन तीन आवश्यक ऐरोमैटिक ऐमीनो अम्ल हैं जो फॉस्फोइनोल पाइरुवेट द्वारा शिकिमेट के मार्ग से बनते हैं।

पौधे सल्फेट (SO_4^{2-}) को सल्फाइड (S^{2-}) में अवकृत करने में सक्षम हैं। यह माना गया है कि प्रकाश संश्लेषण में फोटोइलेक्ट्रॉन ट्रांसपोर्ट के माध्यम से इस क्रिया में ए.टी.पी. तथा एन.ए.डी.पी.एच. का उपयोग होता है। सल्फर युक्त ऐमीनो अम्ल, सिस्टीन तथा मेथायोनीन के बनने में सल्फर की आपूर्ति इसी सल्फाइड से होती है।

क्लोरोफिल का संश्लेषण

आश्चर्यजनक होने के साथ ही यह सही है कि वनस्पति अनुकूल परिस्थितियों में अपनी आवश्यकता का हर पदार्थ स्वयं ही निर्माण करने में समर्थ है। इस दृष्टि से यह वास्तव में पूर्ण स्वावलंबी होती है। हम देख चुके हैं कि सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा को ग्रहण करने तथा प्रकाश संश्लेषण द्वारा अनेक पदार्थों की सृष्टि करने में क्लोरोफिल एक आधारभूत उत्प्रेरक के रूप में काम करता है। अणुओं की रासायनिक संरचना के आधार पर कई प्रकार के क्लोरोफिल की पहचान की गई है, जैसे क्लोरोफिल a, b, c इत्यादि। पौधों की सभी प्रजातियों में, जो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा ऑक्सीजन बनाती हैं, क्लोरोफिल a अवश्य पाया जाता है। आइए, अब देखें कि वनस्पति पत्तियों तथा हरे तनों के हरे पदार्थ क्लोरोफिल, जो प्रकाश संश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान देता है, किस प्रकार बनाती है।

रसायन विज्ञान में क्लोरोफिल जिस वर्ग के पदार्थों में रखा जाता है उन्हें पॉर्फिरिन कहते हैं। इस वर्ग में एक और महत्वपूर्ण पदार्थ है हीमोग्लोबिन जो लगभग सभी कशेरुकी (vertebrates) में और कुछ अकशेरुकी (invertebrates) में भी पाया जाता है। हम जानते हैं कि प्राणियों में हीमोग्लोबिन शरीर के अवयवों में ऑक्सीजन के संचालन का साधन है। हीमोग्लोबिन का अणु वास्तव में हीम (heme) नामक पॉर्फिरिन तथा ग्लोबिन (globin)

नामक प्रोटीन से बनता है। पॉर्फिरिन चार नाइट्रोजन युक्त एक चक्रीय अणु होता है तथा इसमें धातु के एक परमाणु को चारों नाइट्रोजन से रसायनिक बंधों द्वारा बांध कर रखने की क्षमता होती है। हीम में लोहे का एक परमाणु होता है जबकि क्लोरोफिल में मैग्नीशियम का एक परमाणु उपस्थित रहता है।

पौधे किस प्रकार पॉर्फिरिन का निर्माण करते हैं, इस जटिल क्रिया को समझने के लिए ^{14}C, ^{13}C तथा ^{15}N आइसोटोपों से युक्त अग्रगत (precursor) रसायनों का अत्यंत कुशलता से प्रयोग किया गया। फलस्वरूप यह पाया गया कि पौधों द्वारा पॉर्फिरिन के निर्माण में सभी कार्बन तथा चारों नाइट्रोजन मात्र ऐसीटिक अम्ल (CH_3–COOH) तथा ग्लाइसीन (NH_2–CH_2–COOH) नामक ऐमीनो अम्ल से लिए जाते हैं। इस क्रिया में जिन अन्य सहायकों की आवश्यकता है, वह हैं प्रकाशीय ऊर्जा तथा एंज़ाइमों के निर्माण के सभी उपादान। यह पौधों की नन्हीं सी प्रयोगशाला का एक और आश्चर्यजनक कारनामा है।

प्रोटीन

पौधों तथा जीवधारियों के जीवन में न्यूक्लीइक अम्ल प्रारंभिक पदार्थ हैं और यही प्रोटीन का निर्माण करते हैं, अन्य सभी पदार्थों के निर्माण में एंज़ाइमों के रूप में प्रोटीन की सबसे मुख्य भूमिका है। स्वयं न्यूक्लीइक अम्ल बिना एंज़ाइमों की सहायता के नहीं बन सकते। पौधों के प्रोटीन बहुत बड़े अणु वाले पदार्थ हैं जो बीस ऐमीनो अम्लों के परस्पर पेप्टाइड बंधों द्वारा जुड़ने से बने हैं। प्रोटीनों में उपस्थित ऐमीनो अम्लों की तुलनात्मक मात्रा भिन्न-भिन्न होती है तथा विभिन्न प्रोटीनों की शृंखलाओं में इनका क्रम अलग-अलग होता है। इसके अतिरिक्त प्रोटीनों के अणुओं का आकार, उनकी द्वितीयक (secondary), तृतीयक (tertiary) तथा चतुर्थक (quarternary) संरचना, यह सब मिलकर इनकी अपार विभिन्नता के लिए उत्तरदायी हैं।

पौधों में प्रोटीन सर्वत्र उतनी अधिक मात्रा में नहीं पाई जाती जितनी जीव-जंतुओं में होती है। सबसे बड़ा अंतर यह है कि जीव-जंतुओं का शारीरिक ढांचा, जैसे मांशपेशियां, त्वचा, बाल इत्यादि, प्रोटीन का बना होता है, जबकि पेड़-पौधों में इसका स्थान सेलुलोस तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट व लिग्निन ने ले लिया है। कुछ वनस्पतियों के बीजों में प्रोटीन भंडारों के रूप

में उपस्थित रहती है, जो बीजों के अंकुरण काल में काम आती है। इसकी मात्रा बीजों के भार की 50% तक हो सकती है।

एकबीजपत्री (monocotyledon) तथा द्विबीजपत्री (dicotyledon) दोनों प्रकार के बीजों में प्रोटीन पाई जाती है। भंडारित प्रोटीनों का अणुभार प्रायः बहुत अधिक होता है और इसका कारण है इसके अणुओं के आपस में संयोजन (association) तथा वियोजन (dissociation) का गुण। बीजों का सूखना तथा अंकुरण के समय पानी सोखना इसके परासरण (osmotic) दाब में भारी परिवर्तन लाते हैं। प्रोटीन के ऐसे अणु इस परिवर्तन को सहन करने में समर्थ होते हैं। अंकुरण के समय तीव्र उपापचयी क्रियाएं होती हैं और नाइट्रोजन की आवश्यकता की पूर्ति ग्लूटैमिक अम्ल (glutamic acid) या आर्जिनीन (arginine) से होती है जिसका भंडारित प्रोटीन में बाहुल्य होता है। न्यूक्लीइक अम्लों की सहायता से पौधों की प्रोटीन बनाने की कला कितनी दूरदर्शिता रखती है यह आश्चर्यचकित करने वाला प्रसंग है। हर प्रोटीन, चाहे वह एंज़ाइम हो, एंज़ाइमों को संशोधित करने वाली एंज़ाइम हो (जैसे काइनेज़, kinase या फॉस्फोरिलेस, phosphorylase) या भंडारण के लिए बनी हुई प्रोटीन हो, विशेष संरचना तथा आकार वाली बनाई जाती है।

तिलहनों से तेल निकालने के बाद जो बीजों का अवशिष्ट (cake) बचता है वह प्रोटीन का महत्वपूर्ण स्रोत है। निम्न तालिका में सामान्य भोज्यपदार्थों के बीजों में तथा तिलहनों के अवशिष्ट में प्रोटीन की मात्रा दी गई है -

सारणी 4.1 : बीजों व तिलहनों के अवशिष्ट में प्रोटीन की मात्रा

बीज	प्रोटीन%	तिलहनों का अवशिष्ट	प्रोटीन %
जौ	10.8	नारियल	23.6
मक्का	7.8	कपास	30.4
चावल (पॉलिश किया)	7.7	मूंगफली	55.2
गेहूं	12.4	ताड़ (गुठली)	21.6
मसूर	23.8	सोयाबीन	50.4
चना	22.0	सूर्यमुखी	20.6

बीजों से प्राप्त होने वाली प्रोटीन मनुष्य तथा वनस्पति भोजी जानवरों के लिए प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। प्रोटीन की मात्रा तथा प्रकार पर कुछ अंशों तक उस जलवायु, मिट्टी तथा उर्वरकों का प्रभाव पड़ता है जहां पौधे उगते हैं। गेहूं, चावल, जौ तथा मक्का उन मुख्य फसलों में आते हैं, जिनकी खेती उनके बीजों के लिए की जाती है। इन बीजों की मुख्य प्रोटीन हैं— एल्बूमिन, ग्लोबुलिन, प्रोलैमिन तथा ग्लूटैलिन जिनकी मात्रा इन बीजों में अलग-अलग होती है।

हर पौधे में प्रोटीन एंज़ाइमों के रूप में उपस्थित रहते हैं जो सभी जैवरासायनिक क्रियाओं के संचालन के लिए आवश्यक उत्प्रेरक का काम करते हैं। वास्तव में पहला एंज़ाइम जो क्रिस्टलीकृत किया जा सका, वनस्पति से ही मिला था। यह था यूरियेज़ (urease) जो सन् 1926 में जैक बीन (Jack bean) से प्राप्त किया गया था। यह देखा गया है कि पौधों में अलग-अलग अवस्थाओं में संचित प्रोटीन की मात्रा कम या अधिक हो सकती है। बीजों के अंकुरण काल में संचित प्रोटीन की हाइड्रोलिसिस होकर अंकुर की वृद्धि के लिए आवश्यक अवयव मिलते हैं। इस अवसर पर उन एंज़ाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि हो जाती है जो प्रोटीन की हाइड्रोलिसिस करते हैं। कुछ ऐसा ही तब होता है जब पतझड़ के आगमन पर पेड़ों की पत्तियां गिरने लगती हैं।

हम जानते हैं कि पौधों की प्रोटीन मनुष्य के लिए कितनी आवश्यक वस्तु है परंतु कई पौधों में ऐसी प्रोटीन पाई जाती हैं जो जीवन के लिए हानिकारक होती हैं। कुछ जातियों के पौधों के बीजों में हीमैग्लूटिनिन (hemagglutinin) नामक प्रोटीन पाई जाती हैं जो रक्त कोशिकाओं को आपस में जोड़ देती हैं और जीवन के लिए भयंकर परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अरंडी के बीजों में पाई जाने वाली प्रोटीन Ricin भी एक विषैली प्रोटीन है। अनेक पौधों की प्रोटीन कुछ मनुष्यों में असामान्य ऐलर्जी (allergy) को जन्म देती है।

5

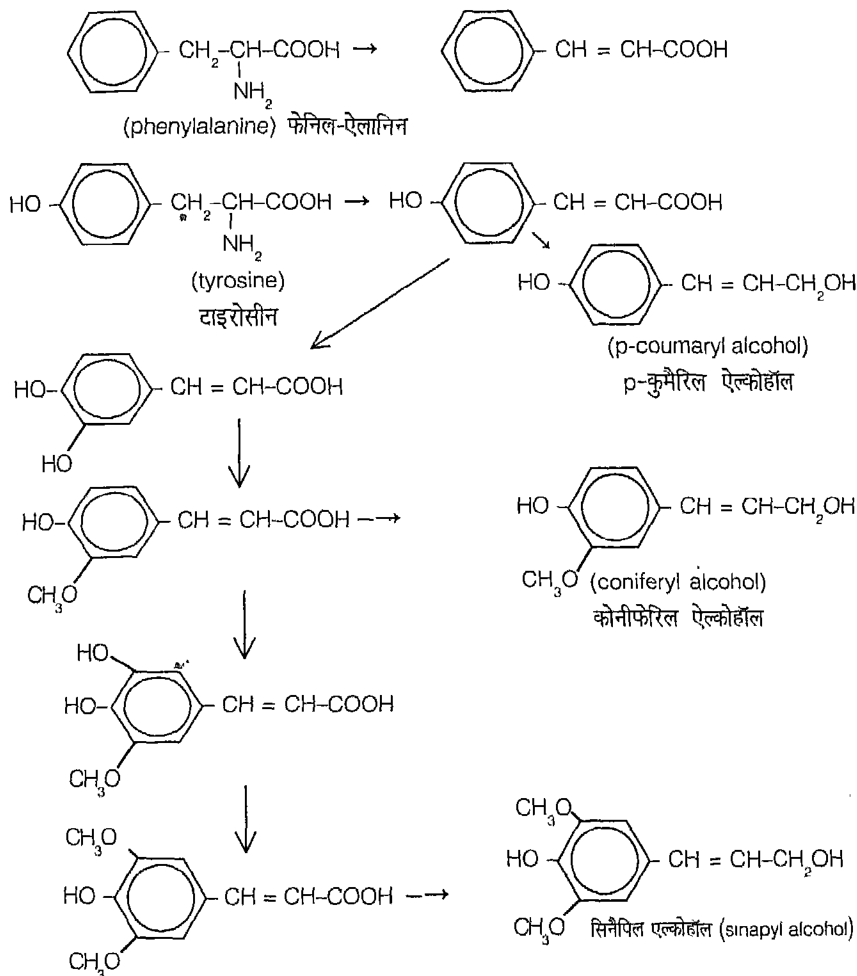
बहुलक, लिग्नन तथा बाह्य आवरण के रसायन

लिग्निन (Lignin)

लिग्निन वह पदार्थ है जो लकड़ी के सेलुलोस से बने तंतुओं को आपस में जोड़ कर रखता है और उन्हें सुदृढ़ता प्रदान करता है। सेलुलोस की भांति लिग्निन एक ही प्रकार के अणुओं से निर्मित पदार्थ नहीं है वरन फेनिल प्रोपेन प्रजाति के रसायनों से बने उच्च अणुभार वाले अनेक पदार्थों का सम्मिलित नाम है। रसायनज्ञ पेयन ने सन् 1838 में यह देखा कि सांद्र नाइट्रिक अम्ल से क्रिया करने पर लकड़ी का एक भाग घुल कर निकल जाता है और रेशों के रूप में सेलुलोस बच जाता है। लकड़ी का यह घुलनशील अवयव ही लिग्निन है। तने और शाखाओं के अतिरिक्त लिग्निन पौधों के अन्य सभी भागों, जैसे छाल, जड़, फल, गुठलियों इत्यादि में भी पाया जाता है। परिपक्व काष्ठ का 18 से 38 प्रतिशत भाग लिग्निन से बना होता है।

पौधों की वृद्धि के काल में सबसे पहले सेलुलोस बनता है। उसके बाद सेलुलोस के रेशों के बीच के खाली स्थानों में लिग्निन का निर्माण आरंभ होता है। संभवतः लिग्निन का निर्माण करने के लिए आवश्यक रसायन वहां पहले से ही उपस्थित रहते हैं। इस क्रिया को काष्ठाभन (lignification) कहते हैं। काष्ठाभन के अनेक उद्देश्य हैं। यह सीमेंट की भांति सेलुलोस के रेशों को आपस में बांधता है, जिससे एक तो वह भौतिक रूप से अधिक सुदृढ़ हो जाते हैं, दूसरे उनमें रासायनिक तथा जैवरासायनिक आक्रमणों से बचने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। परिणाम यह होता है कि पूर्णतः लिग्नीफाइड सेलुलोस के रेशे अब पौधे की जीवन प्रक्रियाओं में सक्रिय भाग नहीं लेते, केवल उसको सुदृढ़ता प्रदान करते हैं।

लिग्निन कैसे बनते हैं, इस विषय में पर्याप्त अनुसंधान हुए हैं। यह माना जाता है कि इनका स्रोत भी पौधों के प्राथमिक उत्पाद कार्बोहाइड्रेट ही हैं। D-ग्लूकोज़ शिकिमेट पथ



चित्र 5.1 : सिनेमेट पथ (Cinnamate Pathway)

(shikimate pathway) की क्रियाओं के माध्यम से दो ऐमीनो अम्लों का संश्लेषण करता है। यह हैं फेनिलऐलेनीन तथा टाइरोसीन। सिनेमेट पथ (cinnamate pathway) के द्वारा इन ऐमीनो अम्लों से तीन ऐल्कोहॉल पैरा-कुमैरिल (p-coumaryl) ऐल्कोहॉल, कोनीफेरिल (coniferyl) ऐल्कोहॉल तथा सिनैपिल (sinapyl) ऐल्कोहॉल का संश्लेषण होता है। इन क्रियाओं में कई एंज़ाइमों, ए.टी.पी., एन.ए.डी.पी.एच. तथा कोएंज़ाइम ए की मुख्य भूमिका होती है। सिनेमेट पथ से प्राप्त तीनों ऐल्कोहॉल लिग्निन बनाने के आधारभूत पदार्थ हैं। पौधों में व्याप्त लिग्निन इसकी मूल इकाइयों के आधार के अनुसार तीन मुख्य प्रकार के होते हैं —

- मृदु काष्ठ (softwood) या अनावृत्तबीजी (gymnosperm) से प्राप्त लिग्निन जो मुख्यतः कोनीफेरिल ऐल्कोहॉल से बनता है।
- दृढ़ काष्ठ (hardwood) या द्विबीजपत्री वाले (dicotyledon) आवृत्तबीजी से प्राप्त लिग्निन जिनके मूल पदार्थ कोनीफेरिल तथा सिनैपिल ऐल्कोहॉल दोनों होते हैं। इन दोनों का अनुपात 4:1 से लेकर 1:2 तक हो सकता है।
- घास या वार्षिक (annual) या एकबीजपत्री वाले (monocotyledon) आवृत्तबीजी (angiosperm) से प्राप्त लिग्निन जिनके मूल पदार्थ मुख्य रूप से पैरा-कुमैरिल ऐल्कोहॉल तथा कुछ मात्रा में कोनीफैरिल तथा सिनैपिल ऐल्कोहॉल होते हैं।

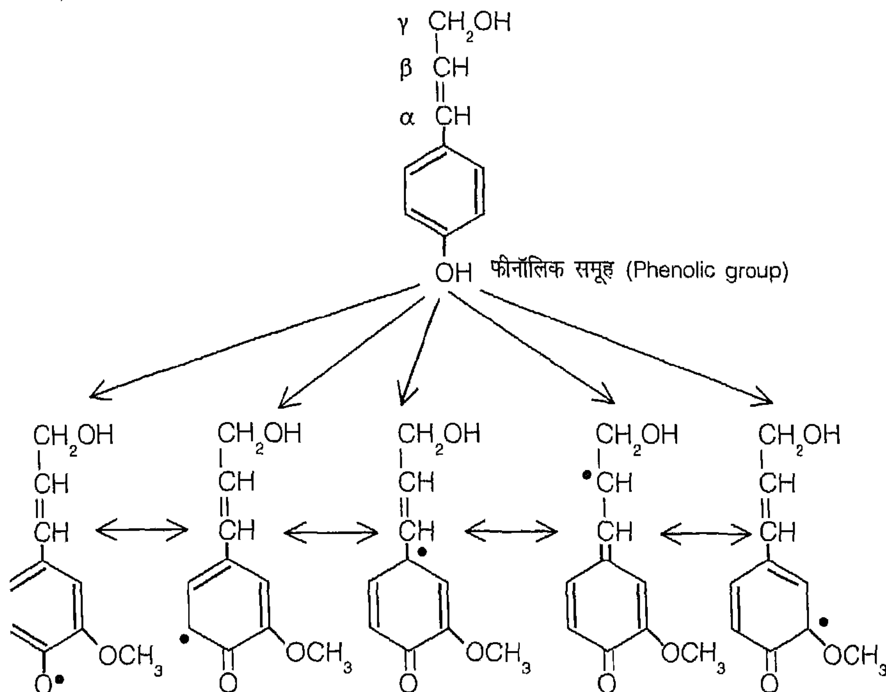
लिग्निन बनने की क्रिया में सबसे पहले एंज़ाइम की क्रिया में डिहाइड्रोजनीकरण (dehydrogenation) द्वारा अत्यंत क्रियाशील मुक्तमूलक (free radicals) बनते हैं। उदाहरणार्थ कोनीफैरिल ऐल्कोहॉल पांच मुक्त मूलक बनाता है जो वास्तव में एक ही पदार्थ की पांच अनुनादी संरचनाएं (resonating structures) हैं (चित्र 5.2)।

आगे क्रिया कर यह अनेक प्रकार के C–C तथा C–O–C बंधों के द्वारा बहुलक लिग्निन का निर्माण कर सकते हैं। यह पाया गया है कि मृदुकाष्ठ (softwood) से प्राप्त लिग्निन का औसत अणुभार 20,000 होता है जबकि दृढ़काष्ठ (hardwood) में पाए जाने वाले लिग्निन का औसत अणुभार अपेक्षाकृत कम होता है। लिग्निन के विशाल अणु के बनने में यह नियमबद्धता नहीं होती जो विभिन्न कार्बोहाइड्रेटों के विषय में निश्चयपूर्वक देखी जा सकती है। फिर भी यह देखा गया है कि लिग्निन के निर्माण में काम आने वाली इकाइयों (कुमैरिल, कोनीफैरिल, तथा सिनैपिल ऐल्कोहॉल) के संबंध में यह कहा जा सकता है कि बहुलक लिग्निन में

(i) गामा–CH_2OH अधिकांशतः स्वतंत्र या अनभिकृत (unreacted) रूप में उपस्थित रहते हैं। अधिकतर बंध अल्फा तथा बीटा कार्बन से बनते हैं।

ii) यह इकाइयां मुख्यतः (~67% या अधिक) ईथर (C–O–C) बंधों तथा शेष C–C बंधों द्वारा जुड़ी हैं।

iii) बहुत कम फ़ीनॉलिक समूह (phenolic groups) स्वतंत्र रहते हैं। यह सभी फ़ेनिल ईथर बंध बनाते हैं।



चित्र 5.2 : कोनीफैरिल ऐल्कोहॉल

प्रश्न यह उठता है कि लिग्निन तथा कार्बोहाइड्रेट पदार्थों के बीच में कौन से बंध हैं जिनसे यह परस्पर जुड़े रहते हैं ? परीक्षणों के आधार पर यह माना गया है कि परस्पर सहसंयोजक (covalent) बंधों में मुख्यतः ईथर बंध होते हैं जिनके द्वारा यह कार्बोहाइड्रेटों के –OH ग्रुप से जुड़े रहते हैं। लिग्निन तथा हेमीसेलुलोस आपस में एस्टर बंधों द्वारा भी जुड़े रहते हैं। कार्बोक्सिलिक समूह हेमीसेलुलोस के ग्लूक्यूरॉनिक (glucuronic) तथा गैलेक्टुरॉनिक

(galacturonic) अम्लों से मिलते हैं। यह उल्लेखनीय है कि लिग्निन की इकाइयों के अल्फा-कार्बन ही इन सब लिग्निन-कार्बोहाइड्रेट बंधों के जुड़ने के स्थल (site) हैं।

मनुष्य के लिए वृक्षों की लकड़ी कितनी उपयोगी है यह कहने की आवश्यकता नहीं। लकड़ी न केवल रहने के लिए घर, घरेलू उपयोग के लिए फर्नीचर, ईंधन तथा कागज़ बनाने के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती है, अनेक गुणों में मनुष्य द्वारा निर्मित कोई पदार्थ इसकी बराबरी नहीं कर सकता। काष्ठ, दो बहुलकों का ऐसा मिश्र पदार्थ (composite) है जहां इसके दो मुख्य अवयव कार्बोहाइड्रेट तथा लिग्निन साथ-साथ एक नियमबद्ध अंतराल से संश्लेषित होते रहते हैं और काष्ठ को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं (चित्र 5.3)।

लकड़ी से कागज़ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सेलुलोस को लिग्निन तथा अन्य पदार्थों से पृथक कर लिया जाए। कागज़ उद्योग में इसके लिए अनेक रासायनिक विधियां विकसित की गई हैं। लिग्निन की उपस्थिति कागज़ के वांछनीय गुणों में कमी कर देती है। ऐसा कागज़ शीघ्र पीला पड़ जाता है।

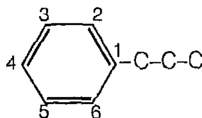


चित्र 5.3 : बांस (Dendrocalamus strictus) का झुरमुट (बंगलौर वनस्पति उद्यान)। बांस घास प्रजाति का है जो कागज़ तथा अनेक बहुपयोगी वस्तुओं को बनाने में काम आता है।

लिग्नन (Lignans)

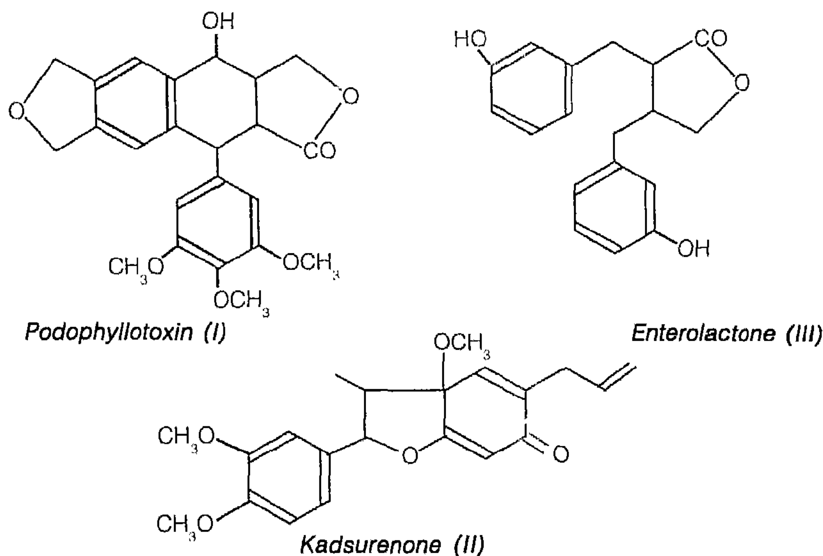
लिग्नन उन रासायनिक पदार्थों का एक समूह है जो दो फेनिल प्रोपेन इकाइयों से बने हैं तथा आपस में

C–C बंधों से जुड़े हैं। ये बंध तीन कार्बन की शृंखला के मध्यवर्ती कार्बन अणुओं को जोड़ते हैं (चित्र 5.4)। कुछ लिग्नन इसके अपवाद भी होते हैं। दो इकाइयों के जुड़ने में



चित्र 5.4 फेनिल प्रोपेन इकाई

ऑक्सीकरण का आवश्यक योगदान है और इसके लिए ऐरोमैटिक वलय के चौथे कार्बन में –OH का होना भी अनिवार्य होता है। अधिकतर लिग्नन पदार्थों में जैवरासायनिक सक्रियता पाई जाती है। यही कारण है कि इन पदार्थों की खोज में विश्व भर में अनेक वैज्ञानिक जुटे हुए हैं। औषधियों के रूप में अत्यंत उपयोगी साबित हुए तीन लिग्नन पदार्थों की रासायनिक संरचना चित्र 5.5 में दी गई है।



चित्र 5.5

(I) अपने व्युत्पादों के रूप में कैंसर की चिकित्सा के लिए, *(II)* दमा, ऐलर्जी तथा थ्रॉम्बोसिस (thrombosis) के उपचार के लिए तथा *(III)* जो वास्तव में स्तनपायी जीवों के शरीर में पाया

गया है, अपनी डिजिटेलिस (digitalis) की भांति जैवरासायनिक सक्रियता के लिए जाना-माना रसायन है।

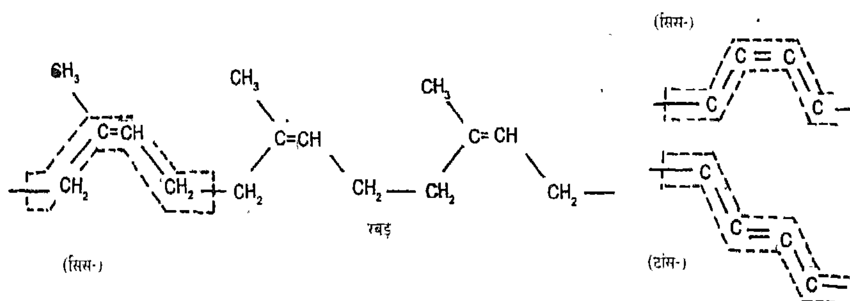
रबड़, गटापरचा तथा वृक्षों के कुछ और अनूठे बहुलक (Polymers)

कोलंबस ने सन् 1496 में अपनी दूसरी समुद्री यात्रा में वैस्ट इंडीज़ के हेइटी द्वीप के निवासियों को ऐसी बॉल से खेलते हुए देखा था जो पटकने पर उछलती थी। इस प्रकार की बॉल से 11वीं शताब्दी के माया सभ्यता के लोग भी खेलते थे और इन्हें बनाने के लिए वे लोग कुछ वृक्षों से निकलने वाले दूध के समान द्रव का उपयोग करते थे। यह रबड़ वृक्ष हेविया ब्राज़ीलिएन्सिस (Hevea braziliensis) जंगलों के रूप में मुख्यतः दक्षिणी व मध्य अमेरिका, विशेषकर ब्राज़ील में पाए जाते रहे हैं। सन् 1876 में रबड़ के पेड़ों के बीज इंग्लैंड के क्यू गार्डन (Kew Garden) में लाए गए। कहानी के अनुसार ये बीज ब्राज़ील के जंगलों से चुराए गए थे, परंतु यह एक कहानी मात्र ही है। वहां इनके उगाने पर प्रयोग किए गए और फिर श्रीलंका तथा मलेशिया में ले जाकर इनके बाग लगाए गए। आज प्राकृतिक रबड़ मुख्य रूप से दक्षिण-पूर्व एशिया का ही उत्पाद है। लगभग 2000 प्रकार के पौधों के अलग-अलग भागों में रबड़ पाया गया है, परंतु केवल 8 प्रकार के वृक्षों में यह उनके ज़ाइलम (xylem) में पाया जाता है। हेविया ब्राज़ीलिएन्सिस ही एकमात्र वृक्ष है जिससे यह औद्योगिक मात्रा में प्राप्त किया जाता है। 5-6 साल के रबड़ के वृक्ष से रबड़क्षीर (latex) निकाला जा सकता है और 30-35 वर्ष तक यह वृक्ष उपयोगी रहता है।

रबड़क्षीर प्राप्त करने के लिए वृक्षों के तनों में पतले और तिरछे चीरे लगाए जाते हैं। इस क्रिया को टैपिंग (tapping) कहते हैं। ये चीरे छाल की उन गहराइयों तक जाते हैं जहां रबड़क्षीर की शिराएं होती हैं। इनसे वृक्ष को हानि नहीं पहुंचती और यह घाव भी शीघ्र भर जाते हैं। रबड़क्षीर रबड़ के कणों का पानी में एक निलंबन (suspension) है। इस निलंबन में रबड़ के कणों को आपस में जुड़ने से रोकने का काम प्रोटीन तथा फॉस्फोलिपिड की पतली झिल्ली करती है।

पौधे रबड़ उसी प्रकार बनाते हैं जैसे वह टर्पीनों का निर्माण करते हैं। आइसोप्रीनाइल पाइरोफॉस्फेट या आई.पी.पी. (isoprenyl pyrophosphate या IPP) ही प्राथमिक रसायन है और इसके अणुओं के Head इनके Tail से जुड़कर पॉलिआइसोप्रीन बनाते हैं। (पृष्ठ 80-81) इन क्रियाओं में वृक्ष के अवयवों तथा रबड़क्षीर के जल में पाए जाने वाले एंज़ाइम

महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक छोटे से 5 कार्बन वाले अणु से आरंभ करके विशाल बहुलक बन जाते हैं जिनका अणुभार 2 से 4 लाख तक होता है। प्रकृति की एक और आश्चर्यजनक कार्यप्रणाली यह है कि रबड़ के अणु की कार्बन की शृंखला का हर द्विबंध, सिस-विन्यास (configuration) में होता है -



चित्र 5.6 रबड़

चित्र में देखने से स्पष्ट हो जाएगा कि सिस– तथा ट्रांस – विन्यासों का रेखागणितीय आधार भिन्न है।

रबड़ का एक विशेष गुण है कि यह अपने स्वाभाविक आकार से कई गुना लम्बाई तक खींचा जा सकता है। खिंचाव हटाने पर यह फिर अपने पूर्व आकार में आ जाता है। प्राकृतिक रबड़ ताप तथा बिजली का कुचालक है।

प्राकृतिक रबड़ के अणु में बहुत से द्विबंध होते हैं। देखा जाए तो प्रति पांच कार्बन अणुओं की इकाई में एक द्विबंध होता है, इसलिए यह रासायनिक रूप से सक्रिय पदार्थ है। प्राकृतिक रबड़ चिपचिपा पदार्थ है और इसे इस रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता। इसको उपयोगी बनाने की मुख्य विधि है वल्कनीकरण (vulcanization)। इसके द्वारा रबड़ के अणुओं की रासायनिक संरचना में परिवर्तन कर दिया जाता है जिसके फलस्वरूप इसके गुणों में जो परिवर्तन होते हैं वह इसे अधिक उपयोगी बना देते हैं। वल्कनीकरण में रबड़ को गंधक या विशेष गंधक युक्त रसायन या यूरेथेन के साथ गरम करते हैं। इस क्रिया में प्राकृतिक रबड़ के अणु की शृंखलाएं आपस में रासायनिक बंधों से जुड़ जाती हैं। ये नए बंध अधिकतर उन कार्बन के बीच बनते हैं जो रबड़ में द्विबंधों द्वारा जुड़े रहते हैं।

प्राकृतिक रबड़ के कुल उत्पादन का 68% परिवहन क्षेत्र में वाहनों के टायर के रूप में उपयोग होता है। अप्राकृतिक संश्लेषित रबड़ (synthetic rubber) के विकास के बाद टायरों में पर्याप्त मात्रा में इसका उपयोग होने लगा है। परंतु अधिक ठंडे प्रदेशों में सुरक्षित परिवहन के लिए प्राकृतिक रबड़ अधिक उपयोगी पाया गया है। रेडियल टायरों में प्रयुक्त होने वाले धातु के तार प्राकृतिक रबड़ से जितने पुष्ट बंधन बनाते हैं उतने संश्लेषित रबड़ से नहीं। इसलिए इनमें sidewall बनाने के लिए जो रबड़ उपयोग में आता है उसमें 50% से अधिक प्राकृतिक रबड़ ही रहता है। हवाई जहाज़ के टायरों में भी मुख्यतः प्राकृतिक रबड़ ही उपयोग में आता है क्योंकि इसमें जहाज़ के उतरते समय लगने वाले आघात को सहन करने की अधिक क्षमता होती है।

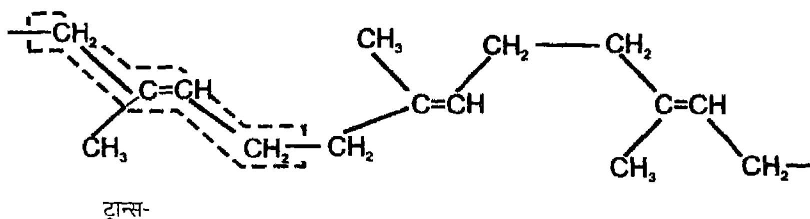
प्राकृतिक रबड़ का एक और मुख्य उपयोग है, संवाहक पट्टियों (conveyer belts) के बनाने में, जिनका उपयोग उद्योगों में फैक्ट्री के अंदर तथा बाहर, खानों में धातुओं के अयस्क (ore) को यथास्थान पहुंचाने में किया जाता है। इसका कारण यह है कि प्राकृतिक रबड़ में जाड़ों की ठंड को सहन करने की अधिक शक्ति है तथा वह कड़े पदार्थों के संपर्क को अधिक सुरक्षित रूप से सहन कर सकता है। प्राकृतिक रबड़ जूतों, टेनिस बॉल, सर्जरी में उपयोग होने वाले दस्तानों तथा घावों के ऊपर लगाने वाले दवायुक्त टेप बनाने में भी काम आते हैं। यह निराविषी (non-toxic), ऐलर्जी रहित तथा सुरक्षित पदार्थ होने के कारण व्यक्तिगत उपयोग में आने वाली कई घरेलू वस्तुओं को बनाने में काम आता है।

आज प्राकृतिक रबड़ का उत्पादन करने वाले मुख्य देश हैं – मलेशिया, इंडोनेशिया तथा थाइलैंड जो विश्व उत्पादन का 80% उत्पादन करते हैं। भारत, श्रीलंका तथा लाइबेरिया अन्य देश हैं जो पर्याप्त मात्रा में रबड़ पैदा करते हैं। आज के वातावरण में प्राकृतिक रबड़ का बहुत बड़ा महत्व है। मलेशिया जैसे देशों की आर्थिक समृद्धता का यह मूल स्रोत है। रबड़ उद्योग हज़ारों लोगों की जीविका का साधन है। यह संश्लेषित रबड़ से किसी गुण में क़म नहीं। यह निराविषी है तथा इसके उद्योग वातावरण को प्रदूषित नहीं करते। इसके विपरीत संश्लेषित रबड़, जो पेट्रोलियम का उत्पाद है, वृक्षों से मिलता है जो नवीनीकृत होने वाली प्राकृतिक संपदा (renewable resource) हैं।

गटापरचा (guttapercha), सैपोटेसी (Sapotaceae) परिवार के वृक्षों से प्राप्त किया जाता है। यह भी पृथ्वीमंडल के उन्हीं भौगोलिक क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जिनमें मुख्यतः मलेशिया

इंडोनेशिया तथा सुमात्रा आते हैं। गटापरचा वाले वृक्षों की अब खेती की जाती है जिनमें सबसे उत्तम वृक्ष Palaguim gutta है। गटापरचा, रबड़ की भांति वृक्षों की टैपिंग से प्राप्त किया जाता है। इसे वृक्ष की पत्तियों तथा टहनियों को पानी के साथ उबाल कर भी निकाला जाता है। बलाटा (balata), मिमुसोप्स बलाटा (Mimusops balata) वृक्षों की टैपिंग करके निकाला जाता है। यह वृक्ष मुख्यतः ब्राज़ील, सुरीनाम तथा गायना में पाए जाते हैं।

रासायनिक रूप से गटापरचा तथा बलाटा दोनों एक ही पदार्थ हैं। ये दोनों पॉलिआइसोप्रीन हैं परंतु रबड़ से भिन्न हैं। रबड़ सिस-पॉलिआइसोप्रीन है जबकि गटापरचा तथा बलाटा ट्रांस-पॉलिआइसोप्रीन हैं। इनके अणु की रासायनिक संरचना निम्न होती है -



चित्र 5.7 गटापरचा, बलाटा

यह भिन्नता भी वृक्षों की असीम सृजन क्रिया की विचित्रता है। एक ही स्रोत आई.पी.पी. (isopentenyl pyrophosphate) से कुछ वृक्ष पॉलिआइसोप्रीन रबड़ (सिस - विन्यास) का निर्माण करते हैं तथा कुछ अन्य वृक्ष पॉलिआइसोप्रीन गटापरचा व बलाटा (ट्रांस- विन्यास) की सृष्टि करते हैं। यह चमत्कार उन एंज़ाइमों की देन है जो प्रकृति ने इन वृक्षों की प्रयोगशाला को दिए हैं।

गटापरचा व बलाटा रबड़ से भिन्न गुण रखते हैं। ये साधारण तापक्रम में भी कड़े पदार्थ होते हैं परंतु गरम करने (60^oC) पर लचीले हो जाते हैं। गटापरचा बिजली तथा ताप का सर्वोत्तम कुचालक है। गटापरचा पर पानी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता इसलिए इसे समुद्रों के

नीचे लगाए जाने वाले केबल (cable) के लिए कुचालक के रूप में प्रयोग किया जाता था। कैनवस (canvas) को गटापरचा से संसेचित (impregnate) कर मशीनों के लिए संवाहक पट्टियां (conveyer belts) बनाई जाती थी। इसके कड़ेपन के गुण के कारण इससे गॉल्फ (golf) की बॉलों का बाहरी आवरण बनाया जाता था। अब यह क्षेत्र प्रायः अनेक संश्लेषित पदार्थों ने ले लिए हैं।

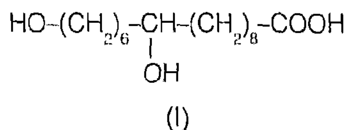
एक और भी पॉलिआइसोप्रीन पदार्थ वृक्षों की देन है। यह है चिकल (chicle) जो मैक्सिको, ग्वाटेमाला तथा वेनेज़ुएला में पैदा होने वाले सैपोडिला (Archus sapota) नामक वृक्षों में पाया जाता है। लगभग 1000 वर्ष पूर्व माया सभ्यता के लोग चिकल से निकले हुए रबड़क्षीर को जमा (coagulate) करके चबाने वाले गम (chewing gum) के रूप में प्रयोग किया करते थे। अब भी सैपोडिला से प्राप्त पॉलिआइसोप्रीन को चबाने वाले गम (chewing gum) के रूप में उपयोग किया जाता है। कुछ अंशों तक अब संश्लेषित पॉलिआइसोब्यूटिलीन तथा स्टाइरीन-ब्यूटाडाइन रबड़ भी चबाने वाले गम बनाने में काम आने लगे हैं।

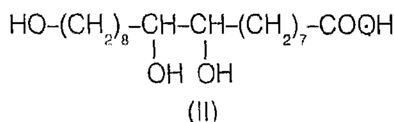
बाह्य आवरण

मनुष्य अपना घर बनाता है। इसके निर्माण में उसकी कितनी मेहनत और कितना बहुमूल्य समय लगता है, यह सभी जानते हैं। इसके उपरांत उसके पास एक प्रश्न उठता है कि इसे किस प्रकार सुरक्षित रखा जाए या इसका जीवन कैसे बढ़ाया जाए। मनुष्य उसकी दीवारों, लकड़ी तथा लोहे की बाह्य सतहों को रंग से ढक देता है। इससे सुंदरता तो बढ़ती ही है, परंतु इससे भी अधिक उसका उद्देश्य होता है, उन्हें हवा, पानी, कीड़ों तथा ताप और प्रकाश द्वारा होने वाली हानि से बचाना। ठीक इसी प्रकार एक बीज से वृक्ष के निर्माण में कितना कार्य करना पड़ा होगा, इसकी गणना करना भी कठिन है। इसलिए इसकी सुरक्षा के लिए ठीक उसी अंदाज़ से तनों, शाखाओं तथा जड़ों को छाल (bark) तथा पत्तियों और फलों को क्यूटिकिल (cuticle) के आवरण से ढक दिया गया है। पौधों की अनूठी प्रयोगशाला में न केवल जड़, तना, शाखाएं, पत्तियां, फूल और फल तथा इनके आंतरिक भागों में उपस्थित रसायनों को बनाने की क्षमता है, वनस्पति उपर्युक्त बाह्य आवरण के अवयव भी स्वयं संश्लेषित करती है।

क्यूटिकिल की सबसे बाहरी परत मोम की भांति के पदार्थों की होती है जो इसके अंदर के क्यूटिन (cutin) को ढके रखती है। क्यूटिन के नीचे पत्तियों और फलों में पेक्टिन रहते हैं जिनसे क्यूटिन रासायनिक बंधों द्वारा संलग्न रहता है।

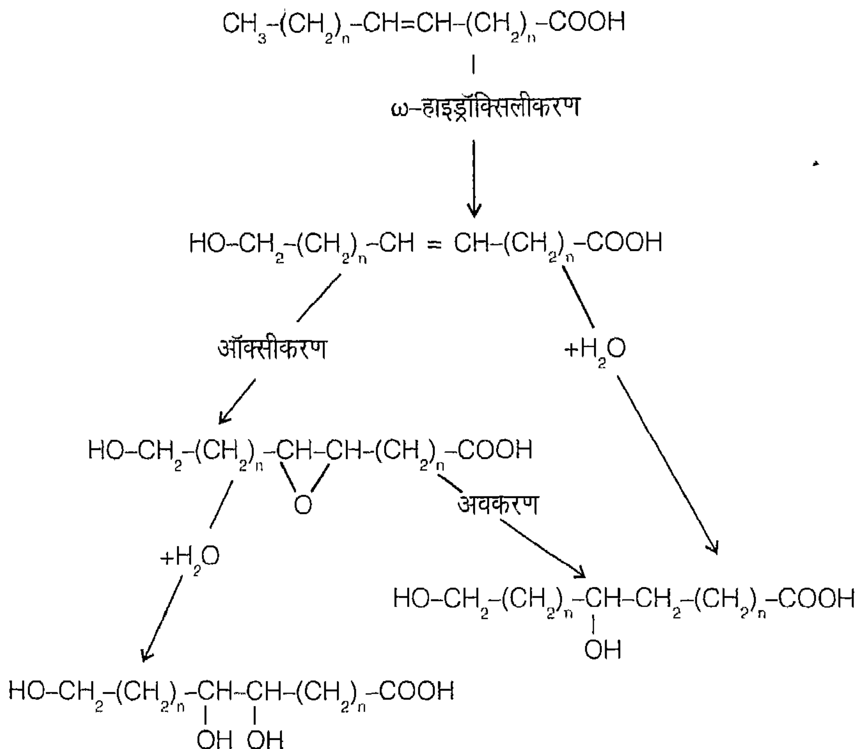
क्यूटिन का रासायनिक स्वरूप पॉलिएस्टर है जिनका निर्माण इनमें पाए जाने वाले हाइड्रॉक्सीकार्बोक्सिलिक अम्लों के आपस में एस्टर बंधों के बनने से होता है। सबसे मुख्य अम्ल हैं 10,16-डाइहाइड्रॉक्सीहैक्साडीकेनॉइक अम्ल (I) जो 16 कार्बन वाले पामिटिक अम्ल का व्युत्पन्न· (derivative) है तथा 9,10,18-ट्राइहाइड्रॉक्सीऔक्टाडीकेनोइक अम्ल (II) जो





स्टिऐरिक अम्ल का व्युत्पन्न है। इनके अतिरिक्त 16 तथा 18 कार्बन वाले तथा दो या तीन हाइड्रॉक्सी समूह वाले अन्य कार्बोक्सिलिक अम्लों के परस्पर पॉलिएस्टर भी क्यूटिन के अन्य अवयव हैं। भिन्न-भिन्न पेड़ों की पत्तियों तथा फलों के क्यूटिन में इन पदार्थों की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती है।

हाइड्रॉक्सीकार्बोक्सिलिक अम्लों के संश्लेषण में मुख्य भूमिका लाइपॉक्सिडेस (lipoxidase) नामक एंज़ाइमों की होती है। यह पाया गया है कि फलों या पत्तियों की सतह को हानि पहुंचने पर इन एंज़ाइमों की कार्यशीलता में वृद्धि हो जाती है क्योंकि उन स्थितियों में क्यूटिन के संश्लेषण का कार्य अधिक तीव्र गति से होना चाहिए। ओलीइक तथा अन्य असंतृप्त वसीय अम्ल ही हाइड्रॉक्सी अम्लों के निर्माण के आधारभूत रसायन हैं।



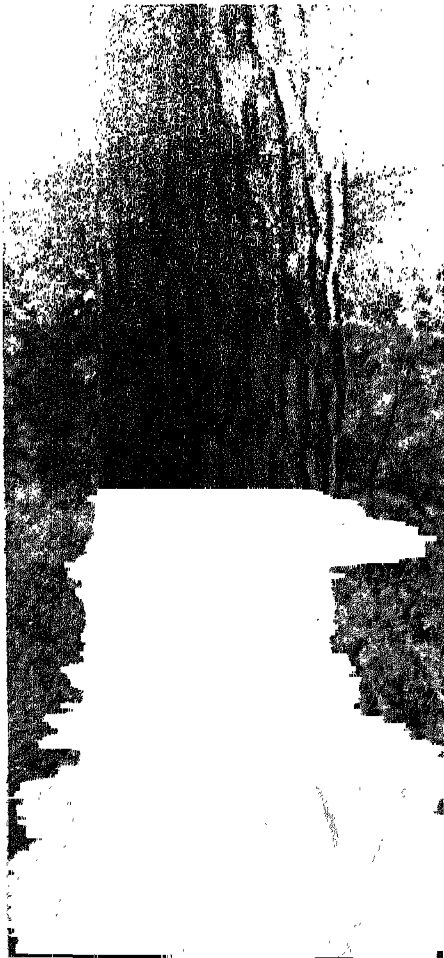
चित्र 5.8

पेड़ों की बाहरी छाल जिसमें कार्क कोशिका (cell) होती हैं, बाहरी आघातों से उनकी रक्षा करती है तथा पेड़ों को ताप तथा नमी के असामान्य परिवर्तनों से बचाती है। पेड़ों की बाहरी छाल मृत कोशिकाओं की बनी होती है जो तने के अंदर होने वाले परिवर्तनों तथा प्रसार के साथ नहीं बढ़ सकती। इसलिए उसमें दरारें बन जाती हैं। इन दरारों का विशेष डिज़ाइन पेड़ों की पहचान बनाता है (चित्र 5.9-5.14)। छाल में जो घुलनशील पदार्थ होते हैं उनकी मात्रा तथा प्रकार वृक्ष विशेष पर निर्भर करती है। ये पदार्थ मोम, टर्पीन, स्टेरॉल, फीनोलिक अम्ल, फ्लैवोन, ग्लाइकोसाइड, कार्बोहाइड्रेट इत्यादि हैं। अघुलनशील पदार्थों में पॉलिसैकेराइड जैसे



↑ *चित्र* 5.9 : देवदार (Cedrus deodara)

↓ *चित्र* 5.10 : *चीड़* (Pinus roxburghii)

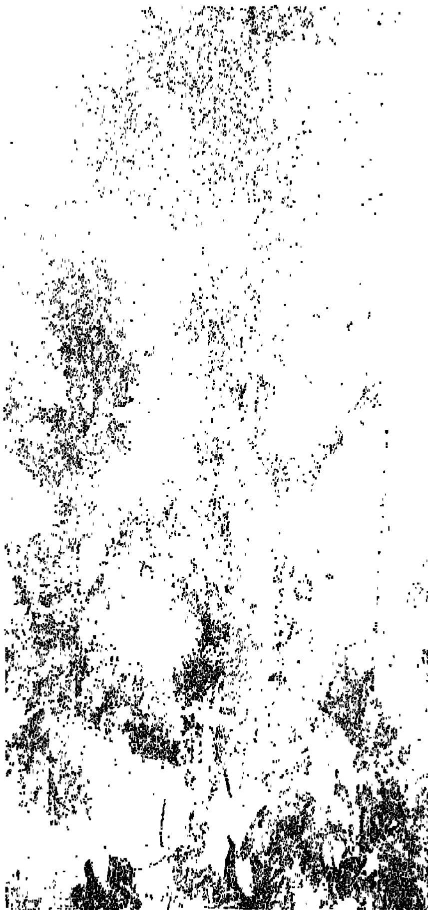


चित्र 5.11 : पद्म (Prunus padas)
←



चित्र 5.12 : वितेन (Melia azadirachta)





चित्र 5.13 : खड़क (Celtis australis)
←

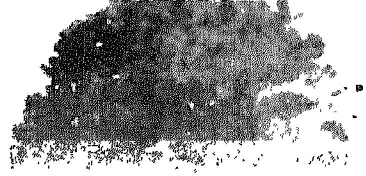


चित्र 5.14 : यूकेलिप्टस (Eucalyptus globulus)
→

सेलूलोस, लिग्निन तथा सुबेरिन (suberin) मुख्य हैं। सुबेरिन, क्यूटिन की भांति ही पॉलिएस्टर हैं जो अधिकतर 18 तथा 22 कार्बन की शृंखला वाले वसीय अम्लों से बने हैं जिनमें एक या दो कार्बोक्सल तथा हाइड्रॉक्सल समूह होते हैं। छाल में 2-5% अकार्बनिक रसायन भी पाए जाते हैं। पॉलिएस्टर सुबेरिन का पौधों द्वारा संश्लेषण लगभग उसी विधि से हुआ है जिससे क्यूटिन बनती है।

पत्तियों तथा फलों के आवरण की सबसे बाहरी सतह मोम की भांति के पदार्थों की होती है। कुछ मात्रा में यह पदार्थ छाल तथा वृक्षों के अन्य बाहरी भागों में भी पाए जाते हैं। इनका मुख्य कार्य पत्तियों की सतह से वाष्पोत्सर्जन (transpiration) द्वारा अत्यधिक जल को बाहर निकलने से रोकना है। सूखे की स्थिति में क्यूटिन तथा मोम की भांति के पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है। कुछ अंशों तक इनमें पौधों को रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं से बचाने की क्षमता भी होती है। इसी आधार पर यह फलों को दीर्घ काल तक सुरक्षित रखने में भी सहायक होते हैं। पौधों को कीटनाशक पदार्थों तथा कवक से बचाने के लिए या अनावश्यक झाड़-झंखाड़ को नष्ट करने के लिए मनुष्य द्वारा अनेक रसायनों का छिड़काव किया जाता है। इन रसायनों की पत्तियों के भीतर प्रवेश करने की क्रिया में क्यूटिकिल के आवरण की सूक्ष्म रचना का विशेष महत्व होता है। यह अनुमान लगाया गया है कि पत्तियों में स्वाभाविक रूप से पाए जाने वाले फीनॉलिक द्रव्य कवक के आक्रमण से पौधों की रक्षा करते हैं।

मोम के आवरण में अनेक रासायनिक पदार्थ पाए जाते हैं। इनमें मुख्यतः लंबी शृंखलाओं वाले संतृप्त तथा असंतृप्त ऐलिफैटिक रसायन होते हैं, जो हाइड्रोकार्बन, ऐल्कोहॉल, अम्ल, ऐल्डिहाइड, कीटोन इत्यादि वर्गों के हो सकते हैं। मोम के आवरण में पाए जाने वाले ऐल्केन हाइड्रोकार्बन मुख्यतः 29 तथा 31 कार्बन वाले पदार्थ होते हैं। इनकी उत्पत्ति लम्बी शृंखला वाले वसीय अम्लों के माध्यम से मानी गई है। फलों की सतह के मोम में कई टर्पीन पाए जाते हैं जिनमें β-सिटोस्टेरॉल (β-sitosterol), ओलिनोलिक (oleanolic) अम्ल तथा एमाइरिन (amyrin) मुख्य हैं। बेबेरी (bayberry) नामक फलों में मोम के आवरण की मात्रा इतनी अधिक होती है कि इसको अलग कर सुगंधित मोमबत्तियां बनाई जाती हैं।



6

वसीय पदार्थ

वसा (Lipids)

वसा (lipid) वह पदार्थ हैं जिनकी जीवमात्र को आवश्यकता होती है, क्योंकि एक तो यह उनके शरीर में होने वाली अनेक रासायनिक क्रियाओं से सीधा संबंध रखते हैं और दूसरे यह उनके लिए ऊर्जा के संचय करने का मुख्य साधन भी हैं। वैसे तो पौधों के प्रायः हर एक भाग में वसा पाई जाती है परंतु अधिकांशतः इसका संचय बीजों तथा फलों में होता है। बड़े वृक्षों की अधिकांश जातियों के बीजों में भोजन वसा के रूप में संचित रहता है। उसी अनुपात में इनमें कार्बोहाइड्रेट कम होता है। यह ध्यान देने योग्य है कि जीवधारियों में वसा तथा कार्बोहाइड्रेट का परस्पर रूपांतरण (transformation) करने की क्षमता होती है। यह जटिल जैवरासायनिक क्रिया भी एक चमत्कार ही है। मनुष्य अपनी समस्त बुद्धि तथा अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं की सुविधाओं के बाद भी इसे संभव नहीं कर सका है। वसा तथा कार्बोहाइड्रेट, यह दो पदार्थ ही बीजों के अंकुरण काल में आवश्यक भोजन (ऊर्जा) की व्यवस्था करते हैं क्योंकि बीजों में वृक्षों की भांति स्वतंत्र रूप से प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं प्राप्त करने की व्यवस्था नहीं होती।

साधारणतः वसीय अम्ल तथा उनके एस्टर, ग्लिसरोफॉस्फोरिक अम्ल तथा इनके एस्टर और ऐमाइड, लंबी शृंखला वाले ऐमीनो एल्कोहॉलों के ऐमाइड जो वसीय अम्लों के साथ ही बने हैं, इत्यादि का सामूहिक नाम ही लिपिड (lipid) कहा जाता है।

निम्न तालिका में पर्याप्त वसा वाले साधारण फल तथा बीजों में उपस्थित वसा की मात्रा अंकित की गई है -

सारणी 6.1 : साधारण फल व बीजों में उपस्थित वसा

फल/बीज	वसा (%)	फल/बीज	वसा (%)
नारियल (copra)	65-68	कपास	18-20
तिल (sesame)	50-55	सोयाबीन	18-20
खजूर (फल)	45-50	सरसों (mustard)	33-49
मूंगफली	45-50	मक्का	24-32
सूर्यमुखी (sunflower)	35-45	अलसी (linseed)*	35-45
जैतून (olive)	25-30	अरंडी*	40-55

** खाने के योग्य नहीं होता।*

पौधों में वसीय अम्ल मुख्यतः ग्लिसरॉल के साथ बने हुए एस्टर के रूप में पाए जाते हैं। यही वनस्पति तेल है। ग्लिसरॉल में तीन हाइड्रॉक्सी समूह हैं इसलिए इसके मोनो, डाइ तथा ट्राइ एस्टरों की उपस्थिति की संभावना है। पौधों में ट्राइ एस्टरों का संचय ही अधिक मात्रा में होता है। मोनो तथा डाइ एस्टर कई प्रकार के अन्य प्राकृतिक लिपिड के बनने में उपयोग होते हैं जिनमें फॉस्फोलिपिड मुख्य हैं। वनस्पति तेलों को सोडियम हाइड्रॉक्साइड के साथ गरम करने पर ये टूट कर ग्लिसरॉल तथा वसीय अम्लों के सोडियम लवणों में परिवर्तित हो जाते हैं। यह सोडियम लवण ही साबुन है।

प्रकृति में पाए जाने वाले वसीय अम्लों की एक विशेषता यह है कि उनमें कार्बन के परमाणुओं की सम (even) संख्या होती हैं। कार्बन की विषम संख्या वाले वसीय अम्ल बहुत कम मात्रा में (<1%) पाए जाते हैं। कार्बन की सम संख्या वाले वसीय अम्ल, जिनमें 10 से 18 तक कार्बन होते हैं, सबसे अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। वसीय अम्ल जल विरोधी (hydrophobic) और जलीय वातावरण में अघुलनशील होते हैं। इनकी उपयोगिता है कोशिकाओं की संरचना (structure) और उनके उपपाचन (मेटाबोलिज़्म) को सही ढंग से संचालित करना।

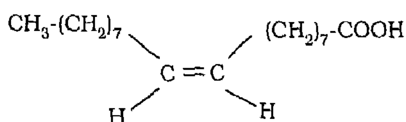
वसीय अम्ल संतृप्त (saturated) तथा असंतृप्त (unsaturated) दोनों प्रकारों में पाए जाते हैं जिनमें असंतृप्त की मात्रा अधिक होती है। असंतृप्त वसीय अम्ल मुख्यतः 16 तथा 18 कार्बन वाले होते हैं और इनमें एक या अधिक द्विबंध (double bond) हो सकते हैं। 18 कार्बन तथा एक द्विबंध वाला ओलीइक अम्ल (oleic acid) सबसे अधिक पाया जाने वाला वसीय अम्ल है। जैतून के तेल में यह 50% से भी अधिक पाया जाता है। 18 कार्बन तथा दो द्विबंधों वाला लिनोलीइक अम्ल सूर्यमुखी के तेल में 50% से अधिक तथा 18 कार्बन व तीन द्विबंधों वाला लिनोलीनिक अम्ल अलसी के तेल में 50% से अधिक पाया जाता है। द्विबंधों की उपस्थिति से वसीय अम्लों का गलनांक (melting point) कम हो जाता है तथा साधारण तापक्रम पर यह द्रवों के रूप में पाए जाते हैं। यही स्थिति ठोस तथा द्रव वनस्पति तेलों की भी है। नारियल के तेल की भांति जो तेल ठोस होते हैं, उनमें संतृप्त वसीय अम्लों की मात्रा अधिक होती है। इसी प्रकार सरसों के तेल की भांति, जो तेल साधारण तापक्रम पर द्रव अवस्था में रहते हैं, उनमें असंतृप्त वसीय अम्लों की मात्रा अधिक होती है।

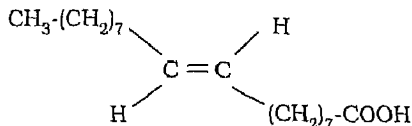
मुख्य रूप से पाए जाने वाले संतृप्त तथा असंतृप्त वसीय अम्ल निम्न तालिका में दिए गए हैं-

सारणी 6.2 : संतृप्त तथा असंतृप्त वसीय अम्ल

कार्बन की संख्या	साधारण नाम	रासायनिक सूत्र
10	केप्रिक अम्ल	$CH_3-(CH_2)_8-COOH$
12	लॉरिक अम्ल	$CH_3-(CH_2)_{10}-COOH$
14	मिरिस्टिक अम्ल	$CH_3-(CH_2)_{12}-COOH$
16	पामिटिक अम्ल	$CH_3-(CH_2)_{14}-COOH$
18	स्टऐरिक अम्ल	$CH_3-(CH_2)_{16}-COOH$
20	ऐरेकिडिक अम्ल	$CH_3-(CH_2)_{18}-COOH$
22	बैहिनिक अम्ल	$CH_3-(CH_2)_{20}-COOH$
18	ओलीइक अम्ल	$CH_3-(CH_2)_7-CH = CH-(CH_2)_7 -COOH$
18	लिनोलीइक अम्ल	$CH_3-(CH_2)_4-CH=CH-CH_2-CH=CH-(CH_2)_7-COOH$
18	लिनोलीनिक अम्ल	$CH_3-CH_2-CH=CH-CH_2-CH=CH-CH_2-CH=CH-(CH_2)_7-COOH$

यह ध्यान देने योग्य है कि एक द्विबंध की उपस्थिति में दो भिन्न समावयवी (isomeric) पदार्थों की संभावना होती है। इस प्रकार ओलीइक अम्ल का ट्रांस-समावयव (isomer) इलैडिक अम्ल है।

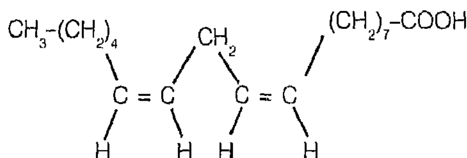




सिस (cis) ओलीइक अम्ल

ट्रांस (trans) इलैडिक अम्ल

प्रकृति में पाए जाने वाले असंतृप्त वसीय अम्ल केवल सिस- संरचना वाले होते हैं। इलैडिक अम्ल पौधों में बहुत कम पाया जाता है। इस आधार पर लिनोलीइक अम्ल की संरचना तथा कार्बन की श्रृंखला का आकार निम्न होगा -

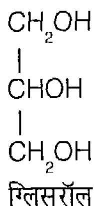




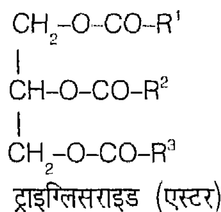
लिनोलीइक अम्ल

चित्र 6.1

हम देख चुके हैं कि प्राकृतिक तेल (ट्राइग्लिसराइड) वसीय अम्लों तथा ग्लिसरॉल के एस्टर होते हैं -



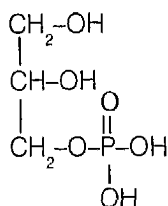
ग्लिसरॉल



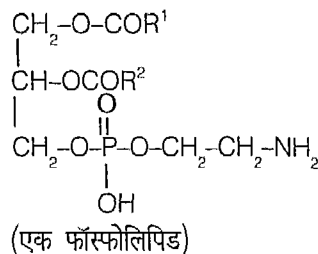
ट्राइग्लिसराइड (एस्टर)

प्रकृति में एक और विशेषता यह पाई गई है कि असंतृप्त वसीय अम्ल ग्लिसरॉल के अणु के बीच वाले कार्बन से संलग्न –OH से एस्टर बंध द्वारा जुड़ा रहता है। ट्राइग्लिसराइड में R^2 में द्विबंध होंगे अर्थात R^2–COOH एक असंतृप्त वसीय अम्ल होगा।

ऐसे वसीय पदार्थ जिनमें फॉस्फोरस होता है फॉस्फोलिपिड (phospholipid) कहलाते हैं। ये ग्लिसरोफॉस्फोरिक अम्ल (glycerophosphoric acid) के व्युत्पाद (derivative) हैं।



(ग्लिसरोफॉस्फोरिक अम्ल)

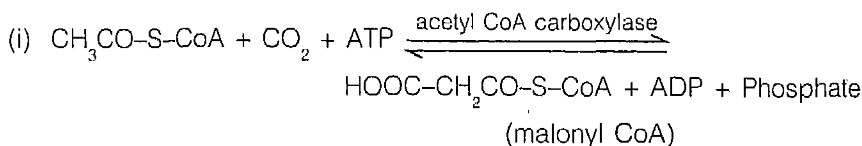


(एक फॉस्फोलिपिड)

ग्लिसरोफॉस्फोरिक अम्ल में ग्लिसरॉल का तीसरा –OH, फॉस्फोरिक अम्ल, $O=P(OH)_3$, के साथ मोनोएस्टर बनाता है। अधिकांश फॉस्फोलिपिड में ग्लिसरॉल का पहला –OH संतृप्त वसीय अम्लों से तथा दूसरा –OH असंतृप्त वसीय अम्लों से एस्टर बनाता है। इसके अतिरिक्त फॉस्फोरिक अम्ल एक 'अन्य पदार्थ' के साथ जिसमें –OH समूह होता है, एस्टर बनाता है। यह 'अन्य पदार्थ' मुख्यतः कोलीन (choline), एथेनॉलऐमीन (ethanolamine), सेरीन (serine) या आइनोसिटॉल (inositol) हो सकते हैं। एथेनॉलऐमीन के साथ बने

फॉस्फोलिपिड का रचनासूत्र पीछे दिया गया है। ग्लिसरोफॉस्फोरिक अम्ल के ये व्युत्पाद कोशिकाओं की झिल्लियों (cell membrane) में पाए जाते हैं। पौधों में जीवधारियों की भांति ही ग्लाइकोलिपिड (glycolipid) भी पाए जाते हैं। इनमें तीसरा –OH समूह किसी कार्बोहाइड्रेट के साथ ईथर बंधों से जुड़ा रहता है। गैलेक्टोज़ (galactose) मुख्य कार्बोहाइड्रेट है, परंतु कभी-कभी ग्लूकोज़ तथा इसके अन्य व्युत्पाद भी ग्लाइकोलिपिड के अंग होते हैं।

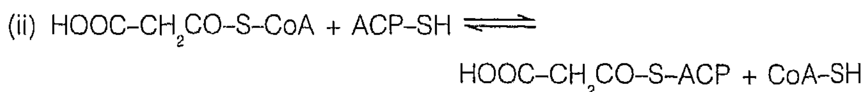
हम देख चुके हैं कि वनस्पति प्रकाश संश्लेषण द्वारा बने कार्बोहाइड्रेट का भंडारण कर लेते हैं। जीवधारी यदि आवश्यकता से अधिक कार्बोहाइड्रेट ले लेते हैं तो इसका कुछ भाग उनके शरीर में पॉलिसैकेराइड, ग्लाइकोजन बन कर जमा हो जाता है, परंतु अधिकतर कार्बोहाइड्रेट वसा के रूप में बदल कर ही संचित होता है। जीवधारियों तथा पौधों में कार्बोहाइड्रेट से वसीय अम्ल बनने की क्रिया में सर्वप्रथम ऐसीटिक अम्ल बनता है। पौधों में ऐसीटिक अम्ल की उत्पत्ति के लिए पाइरुविक अम्ल उत्तरदायी है। वास्तव में पाइरुविक अम्ल, कोएंज़ाइम A(CoA) की उपस्थिति में ऑक्सीकरण द्वारा ऐसीटिल-CoA ($CH_3CO–S–CoA$) बनाता है। इसके उपरांत निम्न चरणों के माध्यम से वसीय अम्ल बनते हैं -



(i) $CH_3CO–S–CoA + CO_2 + ATP \xrightleftharpoons{\text{acetyl CoA carboxylase}}$

$HOOC–CH_2CO–S–CoA + ADP + Phosphate$
(malonyl CoA)

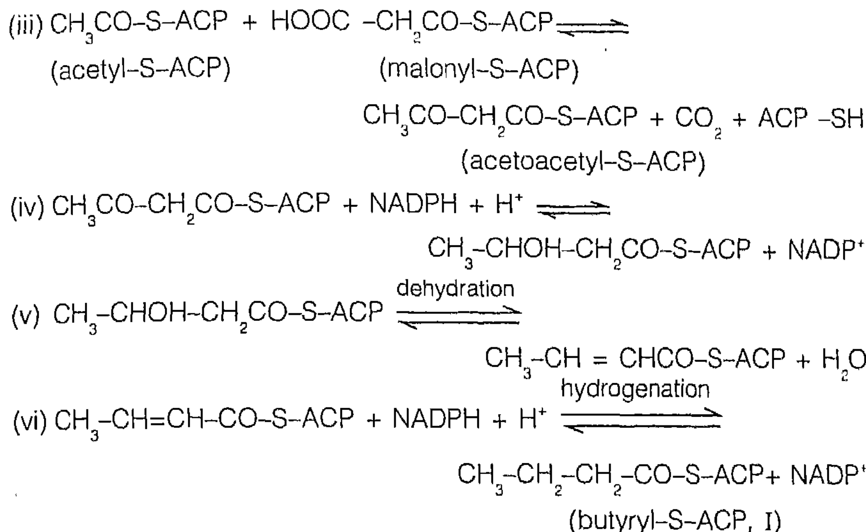
ऐसिल-वाहक प्रोटीन (Acyl carrier protein) (ACP–SH), –SH समूह वाली छोटे आकार की एक प्रोटीन है जो मलोनिल कोएंज़ाइम से विपक्ष एस्टरीकरण (transesterification) के द्वारा malonyl–S–ACP बनाती है -



(ii) $HOOC–CH_2CO–S–CoA + ACP–SH \rightleftharpoons$

$HOOC–CH_2CO–S–ACP + CoA–SH$

इसी प्रकार acetyl–S–ACP भी बनता है जो malonyl–S–ACP से क्रिया करता है-



(iii) $CH_3CO\text{–}S\text{–}ACP + HOOC\text{–}CH_2CO\text{–}S\text{–}ACP \rightleftharpoons$
(acetyl–S–ACP) (malonyl–S–ACP)

$CH_3CO\text{–}CH_2CO\text{–}S\text{–}ACP + CO_2 + ACP\text{–}SH$
(acetoacetyl–S–ACP)

(iv) $CH_3CO\text{–}CH_2CO\text{–}S\text{–}ACP + NADPH + H^+ \rightleftharpoons$

$CH_3\text{–}CHOH\text{–}CH_2CO\text{–}S\text{–}ACP + NADP^+$

(v) $CH_3\text{–}CHOH\text{–}CH_2CO\text{–}S\text{–}ACP \xrightleftharpoons{\text{dehydration}}$

$CH_3\text{–}CH = CHCO\text{–}S\text{–}ACP + H_2O$

(vi) $CH_3\text{–}CH{=}CH\text{–}CO\text{–}S\text{–}ACP + NADPH + H^+ \xrightleftharpoons{\text{hydrogenation}}$

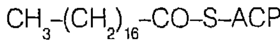
$CH_3\text{–}CH_2\text{–}CH_2\text{–}CO\text{–}S\text{–}ACP + NADP^+$
(butyryl–S–ACP, I)

(iii) से (vi) तक के चार चरणों की पुनरावृत्ति होती है, यानी पहले चक्र में I, malonyl–S–ACP से क्रिया करेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि हर चार चरणों की पूर्ण आवृत्ति में दो कार्बन और जुड़ जाते हैं। I चार कार्बन वाला ब्यूटाइरिक अम्ल देगा। इसकी अगली आवृत्ति का उत्पाद छः कार्बन अणु वाला अम्ल होगा, इत्यादि। चार चरणों वाली सात आवृत्तियों के उपरांत 16 कार्बन वाला पामिटिक अम्ल मिलेगा। यह क्रिया यहीं समाप्त हो जाती है। अधिक कार्बन जोड़ने की क्रिया अन्य रूप से आगे बढ़ती है। जैवसंश्लेषण की इस क्रियाविधि (mechanism) के कारण प्रकृति में कार्बन की सम संख्या वाले वसीय अम्ल ही पाए जाते हैं।

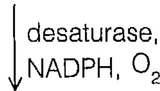
प्रश्न यह उठता है कि पौधे असंतृप्त वसीय अम्ल किस प्रकार बनाते हैं ?

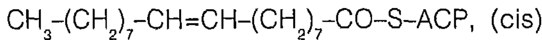
असंतृप्त वसीय अम्ल का संश्लेषण संतृप्त वसीय अम्लों से होता है। यह क्रिया कई प्रकार से होती है और इसमें अलग-अलग एंज़ाइमों का सहयोग मिलता है। ये सभी एंज़ाइम डीसैचूरेज़ (desaturase) हैं। एक मुख्य एंज़ाइम जो स्टिऐरिक अम्ल को ओलीइक अम्ल में बदलता है, तीन पदार्थों से बना होता है, डीसैचूरेज़ एंज़ाइम, एन.ए.डी.पी.एच.ऑक्सीडेज़

तथा फेरीडॉक्सिन। ये स्टेरॉल-ACP पर क्रिया करते हैं। इनकी क्रिया से द्विबंध C_9–C_{10} के बीच बनता है और यह सिस-ओलीइक अम्ल बनाते हैं –



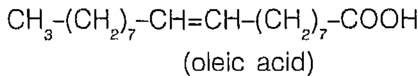
$$CH_3\text{–}(CH_2)_{16}\text{–}CO\text{–}S\text{–}ACP$$





$$CH_3\text{–}(CH_2)_7\text{–}CH\text{=}CH\text{–}(CH_2)_7\text{–}CO\text{–}S\text{–}ACP, \text{ (cis)}$$





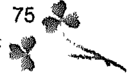
$$CH_3\text{–}(CH_2)_7\text{–}CH\text{=}CH\text{–}(CH_2)_7\text{–}COOH$$

(oleic acid)

तेल तथा वसा मनुष्य के लिए कितनी उपयोगी वस्तु हैं, यह तो हम अपने चारों ओर दृष्टि डालते ही जान सकते हैं। भोजन के रूप में तो यह हमारे लिए आवश्यक हैं ही, साबुन, प्रक्षालक, रंग और वार्निश, प्लास्टिक तथा मशीनों के लिए चिकनाई के रूप में इनका सर्वत्र उपयोग होता है। आज वनस्पति तेलों को मोटर वाहनों के लिए ईंधन का पर्याय बनाने की दिशा में भी प्रयोग हो रहे हैं। इनकी मांग इतनी अधिक हो चुकी है कि अब मनुष्य तिलहनों

सारणी 6.3 : कुछ वृक्षों के बीजों में तेल की मात्रा

वृक्ष		तेल %
नीम	(Azadirachta indica)	20
महुआ	(Madhuca indica)	35
साल	(Shorea robusta)	12–13
कुसुम	(Schleichera oleosa)	33
खाकन	(Salvadora oleoides)	33
नहोर	(Mesua ferea)	40
कोकुम	(Garcinia indica)	40
उंडी	(Calophyllum inophyllum)	60



की खेती के अतिरिक्त जंगलों के वृक्षों से भी वनस्पति तेलों को प्राप्त कर रहा है। कुछ वृक्षों के बीजों में पर्याप्त मात्रा में तेल होता है। सारणी 6.3 में भारत में पैदा होने वाले अनेक वृक्षों के बीजों में तेल की मात्रा दी गई है। अधिकांश तेल भोज्य हैं और कुछेक को साधारण विधियों से शोधित करके इस योग्य बनाया जा सकता है।

सगंध तेल (Essential oils)

मनुष्य अनादि काल से पौधों से प्राप्त पदार्थों का सुगंधियों के रूप में उपयोग करता आया है। वैदिक युग से आज तक हिंदुओं के हर क्रिया-कलाप तथा पूजादि अनुष्ठानों में अगरबत्तियों और सुगंधित काष्ठों का उपयोग होता आया है। चंदन की लकड़ी अपनी सुगंध के लिए पवित्र मानी गई है। इसका उपयोग प्रतिदिन की पूजा, अर्चना तथा माथे पर लगाने से लेकर मरणोपरांत भी किया जाता है। फ्रांस, इटली तथा अनेक यूरोपीय देशों में मध्यकालीन समय से ही सुगंधियों का निर्माण तथा प्रयोग किया जाता रहा है। इतिहास में इसका प्रमाण मिलता है। 'तीन सत्पुरुष बालक क्राइस्ट और मां मैरी को देखने आए। उन्होंने उनकी आराधना की और अपने भंडार में से उन्हें स्वर्ण, फ्रेंकिनसेन्स तथा मर अर्पित किए।' यह है बाइबिल का आज से 2000 वर्ष पुराना आख्यान जिसमें वर्णित दो सुगंधित पदार्थों को स्वर्ण तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थों के समकक्ष रखा गया था। यह पदार्थ आज भी प्रयोग किए जाते हैं। मिस्र में आज से 3000 वर्ष पहले जिन सुगंधित रेज़िन (resin) को शवों पर ममी (mummies) बनाने के लिए उपयोग किया गया था, उनकी हल्की सुगंध आज भी महकती है।

प्राचीन काल से ही भोजन में प्रयोग होने वाले मसालों की गंध तथा स्वाद सगंध तेलों (essential oils) के ही कारण होती है। हिंद महासागर स्थित जंजीबार द्वीप समूह 'मसालों के द्वीप' के नाम से प्रसिद्ध था और सारे संसार के व्यापारियों और उनके जहाज़ों के आवागमन का केंद्र था। जंजीबार की लौंग की कलियों का मूल्य सोने से अधिक होता था तथा इनको चोरी-छिपे देश से बाहर ले जाने वालों को मृत्युदंड दिया जाता था। इन मसालों के व्यापार की स्पर्धा में यूरोपीय देशों के बीच अनेक लड़ाइयां हुई हैं।

कई पौधों के फूलों, जड़ों, बीजों तथा फलों में कुछ ऐसे सगंध रसायन पाए जाते हैं जो उस पौधे की स्वाभाविक गंध के लिए उत्तरदायी हैं। यह पदार्थ वाष्पशील (volatile) तथा तेलों की भांति होते हैं इसलिए इन्हें सगंध तेल (essential oil) के नाम से जाना जाता है। यह वसीय तेलों से कई गुणों में भिन्न होते हैं। इनमें तेज़ गंध होती है, ये वाष्पशील होते हैं तथा इन्हें वाष्प आसवित (steam distil) किया जा सकता है। रासायनिक रूप से वसीय तेल ग्लिसरॉल तथा वसीय अम्लों के परस्पर एस्टर हैं तथा इनमें उपर्युक्त गुण नहीं होते। कभी-कभी कुछ विशेष वाष्पशील पदार्थ थोड़ी मात्रा में होने से कई वसीय तेलों में भी गंध पाई जाती है।

आश्चर्य की बात यह है कि उन पौधों की संख्या बहुत कम है जिनमें सगंध तेल पाए जाते हैं। लगभग 150-200 पौधे व्यापारिक रूप से सगंध तेल प्राप्त करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। मनुष्य इनका उपयोग सगंधित अगरबत्तियों, सुगंधों, मसालों तथा औषधियों के रूप में करता आया है। कई सगंध तेलों में कीड़ों को मारने तथा उन्हें प्रतिकर्षित (repel) करने का गुण है तथा कई अनेक खाद्य पदार्थों के परिरक्षण (preserve) करने में सहायक होते हैं।

सगंध तेल मुख्यतः टर्पीन नामक पदार्थ हैं तथा इन्हें हाइड्रोकार्बन और इनके ऑक्सीजन युक्त यौगिकों में विभाजित किया जा सकता है। ऑक्सीजन युक्त यौगिकों में हाइड्रॉक्सी (-OH), ऐल्डिहाइड (–CHO), ईथर (C–O–C), कीटोन (>C=O) तथा एस्टर (–COOR) समूह उपस्थित रहते हैं। कुछ गंध युक्त पदार्थ ऐसे भी हैं जिनमें नाइट्रोजन तथा सल्फर भी होती है। सरसों के वसीय तेल की तीव्र गंध कार्बनिक आइसोथायोसाइनेट के कारण होती है। प्याज़ तथा लहसुन की गंध कार्बनिक सल्फाइडों की उपस्थिति के कारण होती है। कई पदार्थों की विशेष गंध के लिए नाइट्रोजन युक्त इंडोल, स्केटॉल तथा एन्थ्रेनिलिक अम्ल के एस्टर उत्तरदायी हैं। प्रायः सगंध तेल अनेक पदार्थों के अत्यंत जटिल मिश्रण होते हैं। कपूर के वृक्षों से प्राप्त सगंध तेल में 75 रासायनिक पदार्थों की पहचान की जा चुकी है। दूसरी ओर कुछ सगंध तेल ऐसे भी होते हैं जिनका मुख्य अवयव एक विशेष टर्पीन या टर्पीन से भिन्न पदार्थ

होता है। निम्न तालिका में कुछ पौधों तथा इनसे प्राप्त सगंध तेल के मुख्य रासायनिक अवयवों को संकलित किया गया है -

सारणी 6.4 : कुछ पौधों तथा उनसे प्राप्त सगंध तेलों के मुख्य रासायनिक अवयव

सगंध तेल	वनस्पति	मुख्य रासायनिक अवयव (%)
कपूर का तेल	Cinnamomum camphora (लकड़ी तथा पत्तियां)	कपूर (camphor), ~30
कैसिया का तेल	Cinnamomum tamala	
	(पत्तियां)	Eugenol, ~78
	(छाल)	Cinnamaldehyde, 70-85
दालचीनी का तेल	Cinnamomum zeylanicum	
	(पत्तियां)	Eugenol, 85.5
	(आंतरिक छाल)	Cinnamaldehyde, 60-75 Eugenol, 6-15
लौंग का तेल	Eugenia caryophyllata	Eugenol, 95-97
धनिया का तेल	Coriandrum sativum (बीज)	d-Linalool, 45-70
यूकेलिप्टस (गम) का तेल	Eucalyptus globulus (पत्तियां)	Cineole, 64-70
लिनालू (linaloe), इंडियन लैवेंडर का तेल	Bursera delpechiana (फल तथा heartwood)	Linalyl acetate, 35-44 Linalool, 47-48
मौसंबी तथा संतरे का तेल	Citrus sinensis (मौसंबी) Citrus reticulata (संतरा) (फलों का छिलका)	d-Limonene, 90-96
पामरोजा का तेल	Cymopogon martini (तना, पत्तियां, फूल)	Geraniol, 80-95
चंदन का तेल	Santalum album (Heartwood तथा जड़ें)	α-and β- Santalol, 90-96

गुलाब का तेल	Rosa damascena तथा Rosa borborviana (फूल)	Geraniol, 40-60 Citronellol, 20-40
विंटरग्रीन का तेल	Gaultheria procumbens, पत्तियां	Methyl salicylate, 98
सौंफ का तेल	Pimpinella anisum, बीज	Anethole, 90
लेमनग्रास का तेल	Cymbopogan flexuosus, पूरा पौधा	Citral, 75
तारपीन का तेल	Pinus longifolia, oleoresin	Carenes, 37-60 α तथा β-Pinene, 18-30

सगंध तेल को सुगंधियों के रूप में उपयोग करना भी एक कला है। पौधों से प्राप्त सगंध तेल में भले ही मुख्य पदार्थ एक ही हो, जैसा उक्त सारणी से स्पष्ट है, उसकी सुगंध को विशेषता देने में उन सभी पदार्थों का भरपूर योगदान होता है जो उसमें अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में पाए जाते हैं।

यह देखा गया है कि पौधों को एक विशेष गंध देने में एक विशेष जलवायु तथा मिट्टी की अहम भूमिका होती है। उनसे प्राप्त सगंध तेल में उपस्थित रसायन भी एक विशेष अनुपात में उपस्थित रहते हैं। यही तो पौधों की प्रयोगशाला का चमत्कार है। भारत में गुलाब का तेल मुख्य रूप से मध्यवर्ती उत्तर प्रदेश (कन्नौज) में उगाए जाने वाले गुलाब के फूलों से प्राप्त किया जाता है। मसालों में काम आने वाले पौधे मुख्य रूप से केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु के पर्वतीय खंड में पाए जाते हैं। चंदन के लिए कर्नाटक विश्वविख्यात रहा है (चित्र 6.2)।

प्रश्न यह उठता है कि पौधों को सगंध तेल की क्या आवश्यकता है ? यह देखा गया है कि सुगंधित पदार्थ कीड़ों को आकर्षित करने या दूर भगाने का मन्तव्य पूरा करते हैं। फूलों की गंध, विशेष रूप से उनके परागण (pollination) में सहायता देने वाले कीड़ों को आने का निमंत्रण देती हैं। हानि पहुंचाने वाले कीड़े इस गंध से दूर भागते हैं। जड़ों, पत्तियों तथा तनों में उपस्थित सगंध तेल कीड़ों तथा परजीवियों(parasites) से पौधों की रक्षा करते हैं।

चीड़ तथा अन्य वृक्षों से निकलने वाले रेज़िन की भी मुख्यतः यही भूमिका है। वृक्ष के आंतरिक भागों से अधिक जलवाष्प न निकल जाए, यह इससे भी बचाव करता है।

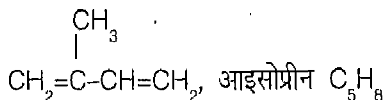
टर्पीन (Terpene)

टर्पीन शब्द से जो परिचित पदार्थ ध्यान में आता है वह है 'तारपीन का तेल'-(turpentine oil) । वास्तव में 'टर्पीन' शब्द की उत्पत्ति तारपीन के तेल के लिए प्रयुक्त जर्मन शब्द 'terpentin' से हुई है। प्रसिद्ध रसायनज्ञ केकुले (Kekule) ने इसे तारपीन के तेल से प्राप्त उन पदार्थों के लिए चुना था जो $C_{10}H_{16}$ के अणु सूत्र से प्रदर्शित किए जा सकते थे।

प्रायः सभी पौधों में, विशेषकर हरे पौधों में, टर्पीन पाए जाते हैं जिन्हें एक ही पदार्थ आइसोप्रीन (isoprene) से संबंधित किया जा सकता है।



चित्र 6.2 : कर्नाटक के वनों में चंदन के नए पौधे लगाए जा रहे हैं।



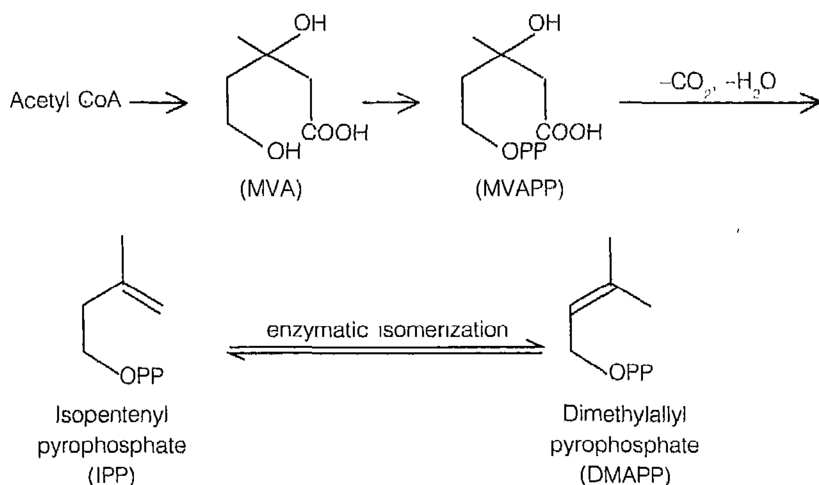
$$CH_2=C(CH_3)-CH=CH_2$$, आइसोप्रीन C_5H_8

पौधों में पाए जाने वाले टर्पीन के कार्बन का ढांचा आइसोप्रीन के एक या अधिक अणुओं के परस्पर मिलने से बनता है और इनका अणु सूत्र, $(C_5H_8)_n$ से प्रदर्शित किया जा सकता है। टर्पीन को द्वितीयक उत्पाद (secondary metabolite) कहा जाता है, भले ही यह एक विवादास्पद विषय माना जाता है। पौधों में पाए जाने वाले टर्पीन इस अणु सूत्र के ऑक्सीजन युक्त व्युत्पाद भी होते हैं जैसे एल्कोहॉल, ऐल्डिहाइड, कीटोन, कार्बोक्सिलिक अम्ल, एस्टर तथा ईथर। C_5H_8 हेमीटर्पीन (hemiterpene) तथा $C_{10}H_{16}$ मोनोटर्पीन (monoterpene) हैं। इसके बाद इसी क्रम में क्रमशः सेसक्यूटर्पीन (sesquiterpene) $C_{15}H_{24}$, डाइटर्पीन (diterpene) $C_{20}H_{32}$, ट्राइटर्पीन (triterpene) $C_{30}H_{48}$ इत्यादि आते हैं।

एक अनुमान के अनुसार पौधों में पाए जाने वाले टर्पीन की संख्या शेष सभी पदार्थों से अधिक होती है। अनेक पदार्थ जिन्हें अलग वर्गों में रखा जाता है, आइसोप्रीन की ही इकाइयों से निर्मित होते हैं। कैरोटीनॉइड जिनमें 40 कार्बन होते हैं, टेट्राटर्पीन हैं। पौधों में स्टेरॉयड की उत्पत्ति भी पांच कार्बन वाली आइसोप्रीन इकाइयों से होती है। अनेक पदार्थों को 'संयुक्त टर्पीन' के वर्ग में रखा जाता है क्योंकि इनके अणुओं की संरचना का एक भाग टर्पीन ही होता है। इनमें क्लोरोफिल, जिबरेलिन (gibberellins) टोकॉफेरॉल (विटामिन के) इत्यादि अनेक वानस्पतिक उत्पाद हैं। क्लोरोफिल तथा [illegible] पौधों के लिए अत्यंत आवश्यक पदार्थ हैं। इसके अतिरिक्त व्यापारिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण रबड़ तथा गटापरचा भी [illegible] इस विवरण से स्पष्ट होता है कि टर्पीन का क्षेत्र कितना विशाल तथा विभिन्नता लिए हुए है और कितनी बहुमुखी है पौधों की प्रयोगशाला जहां पांच कार्बन वाले पदार्थ से आरंभ करके इतने भिन्न-भिन्न पदार्थों का सृजन अनायास ही हो जाता है।

एक ही पौधे में टर्पीन की मात्रा और उनके प्रकार, पौधे के भाग, पौधे की आयु तथा वर्ष के अलग-अलग समय में, भिन्न-भिन्न होते हैं।

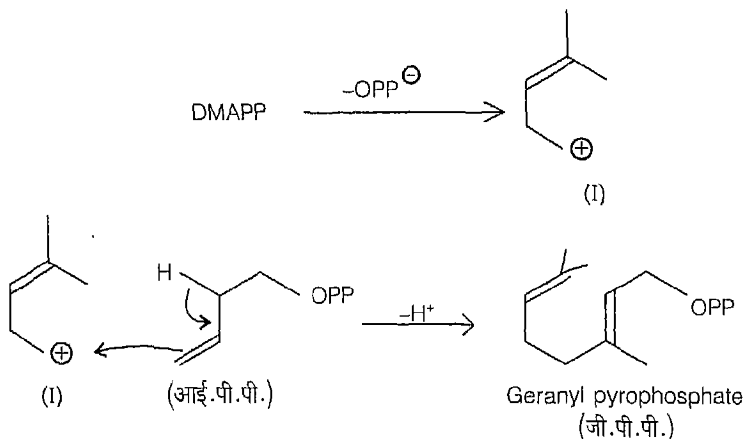
वसीय अम्लों के संश्लेषण की क्रिया से एसीटिल कोएंज़ाइम मिलता है जो मेवलॉनिक अम्ल (mevalonic acid, MVA) बनाता है। MVA ही आइसोप्रीनॉयड पदार्थों की जननी है। ए.टी.पी. की सहायता से MVA अपने पाइरोफॉस्फेट एस्टर, MVAPP में परिवर्तित हो जाता है। अगली क्रियाओं में यह isopentenyl pyrophosphate (आइ.पी.पी.) तथा इसका समावयवी dimethylallyl pyrophosphate (DMAPP) बनाता है -



चित्र 6.3

आइ.पी.पी. वह सक्रिय पदार्थ है जिसके द्वारा 5 कार्बन वाली इकाइयां परस्पर जुड़कर हज़ारों टर्पीन पदार्थों की सृष्टि करती हैं और जिसकी खोज का वैज्ञानिक बहुत समय तक प्रयास करते रहे। सन् 1953 में स्विस वैज्ञानिक एल. रुज़िका (L. Ruzicka) ने अपना Biogenetic Isoprene Rule प्रतिपादित किया।

पाइरोफॉस्फेट के अलग हो जाने पर DMAPP जो कार्बोनियम आयन (carbonium ion) बनाता है, उसी के आई.पी.पी. से क्रिया करने पर दस कार्बन वाले मोनोटर्पीन बनते हैं –

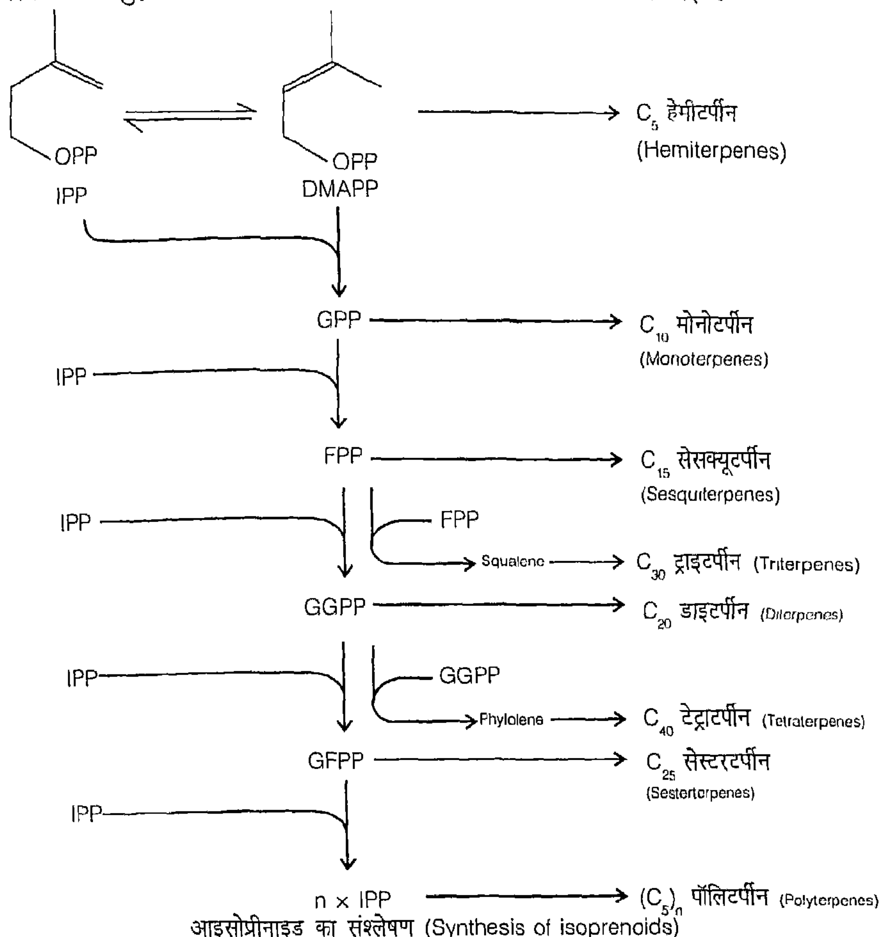


चित्र 6.4

यही अभिक्रिया दो इकाइयों के जुड़ने की सामान्य क्रिया है। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो यह आधारभूत क्रिया भी विचित्र है। मूल पदार्थ है आई.पी.पी.– जो अपना रूप बदल कर DMAPP बनाता है। फिर DMAPP पाइरोफॉस्फेट को त्याग कर आई.पी.पी. के एक अणु से संयोग करता है और दस कार्बन वाला अणु बना लेता है। एक और विशेषता है कि यह सिर (head) से पूंछ (tail) का संयोग है। परोक्ष रूप से एक आई.पी.पी. के अणु का सिर दूसरे आई.पी.पी. के अणु की पूंछ से जुड़ जाता है और अणु का आकार बड़ा हो जाता है।

अगले चरण में जी.पी.पी. में से पाइरोफॉस्फेट ($OPP^{\ominus}$) निकल कर जो धनायन शेष रहेगा, वह एक अन्य आई.पी.पी. से संयोग कर पंद्रह कार्बन वाला फार्नेसिल पाइरोफॉस्फेट

(एफ.पी.पी.) बनाएगा। यह क्रिया इसी प्रकार चलती रहेगी। हर चक्र के बाद उत्पाद में पांच कार्बन और जुड़ जाएंगे। इस अभिक्रिया की रूपरेखा निम्न चित्र में दी गई है-



आइसोप्रीनाइड का संश्लेषण (Synthesis of isoprenoids)

PP = Pyrophosphate, IPP = Isopentenyl pyrophosphate, DMAPP = Dimethylallyl pyrophosphate, GPP = Geranyl pyrophosphate, FPP = Farnesyl pyrophosphate, GGPP = Geranylgeranyl pyrophosphate, GFPP = Geranylfarnesyl pyrophosphate

चित्र 6.5

सेसक्यूटर्पीन समूह शायद टर्पीन का सबसे बड़ा समूह है। न केवल ये सबसे अधिक संख्या में प्राप्त किए जा चुके हैं, इनकी संरचना की विविधता भी पौधों की प्रयोगशाला की कल्पना तथा सामर्थ्य का अनूठा नमूना है।

यह प्रश्न बार-बार उठाया जाता है कि इतने विविध प्रकार के टर्पीन की पौधों के जीवन में क्या भूमिका है ? क्या टर्पीन केवल एक द्वितीयक उत्पाद (secondary metabolite) हैं? पुराना विचार था कि वह केवल मैटाबोलिज़्म के अवांछित उत्पाद हैं। परंतु यह सही नहीं लगता क्योंकि अनेक टर्पीन में स्पष्ट जैविक सक्रियता (biological activity) मौजूद है। दूसरी बात यह भी है कि यदि हम अभी तक इस प्रश्न का उत्तर नहीं ढूंढ़ पाए हैं तो यह मान लें कि यह पदार्थ द्वितीयक उत्पाद ही हैं, उचित नहीं है।

कई टर्पीनों में पौधों के जीवन से संबंधित स्पष्ट जैविक सक्रियता पाई गई है। जिबरेलिन डाइटर्पीन हैं और सभी पौधों में पाए जाते हैं। ये वनस्पति के हॉर्मोन हैं और उनकी वृद्धि से संबंधित हैं। प्रयोगों से यह पाया गया कि जिबरेलिन (gibberellin) कोशिकाओं (cells) की वृद्धि, आर.एन.ए. तथा प्रोटीन के संश्लेषण में सहयोग देते हैं। साइटोकाइनिन (cytokinin) एक अन्य हॉर्मोन है जो पौधों में कोशिकाओं के विभाजन के लिए आवश्यक पदार्थ है। क्लोरोफिल का एक अंग है फाइटोल (phytol) जो एक डाइटर्पीन है और क्लोरोफिल के जैव संश्लेषण के अंतिम चरण में मुख्य अणु से जुड़ता है। इस संयोजन के बाद ही क्लोरोफिल का अणु अपना कार्य करने में सक्षम होता है। ट्रिसपोरिक अम्ल (trisporic acid) भी डाइटर्पीनों से संबंधित है जो पौधों में स्टेरॉयड (steroid) के संश्लेषण के लिए आवश्यक पदार्थ है। पौधों द्वारा कैरोटिनॉइड पदार्थों के संश्लेषण में महत्वपूर्ण एंज़ाइमों को सक्रिय करने में ट्रिसपोरिक अम्ल विशेष भूमिका अदा करता है।

ऐब्सिसिक अम्ल (abscissic acid) पौधों की एक सेसक्यूटर्पीन है, जो एक विशेष चक्र के अनुसार पत्तियों तथा पके फलों के डाल से विलग होने की क्रिया को सहायता देती है। इसे पौधों की वृद्धि को नियमित करने वाले हॉर्मोन की श्रेणी में रखा जाता है। यह पाया गया है कि ऐब्सिसिक अम्ल पौधों की कोपलों की सुप्तावस्था (dormancy) को तथा एंज़ाइम सेलुलेज़ (cellulase) की सक्रियता को बढ़ाता है।

यह अनुमान लगाया गया है कि पौधे अनेक टर्पीनों का अनियमित (random) रूप से संश्लेषण करते हैं जिनमें से अंत में कुछ लाभदायक पदार्थ मिल जाते हैं। यह उत्पाद पौधों

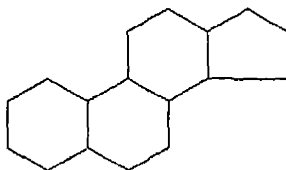
की इन्हीं स्वाभाविक क्रियाओं के लिए उपयोगी होते हैं। यह देखा गया है कि कई टर्पीन उन पारिस्थितिक (ecological) क्रियाओं से संबंध रखते हैं जो कीटों के आपस में, कीट और पौधों में, पौधों के आपस में तथा पौधों और वनस्पतिभोजी जीवों के बीच घटित होती रहती है। पौधों को प्राकृतिक रूप से हानि पहुंचना भी स्वाभाविक है। मौसम की विषमता तथा आवश्यक तत्वों का अभाव भी समय-समय पर झेलना पड़ता है। अपने बचाव के लिए अपनी प्रकृति प्रदत्त रसायनशाला में वह ऐसे पदार्थों का निर्माण करते हैं जो उन्हें इन परिस्थितियों से उबार सकें। इन्हें प्रतिरक्षा (defense) या आक्रमणकारी (attack) रसायन कहें तो अधिक उचित है। Ipomeamaron नामक सेसक्यूटर्पीन एक कवक नाशक पदार्थ है और शकरकंद (sweet potato) की जड़ों में तब उत्पन्न होता है, जब कवक उस पर आक्रमण करती है। Myoporaceae जाति के आस्ट्रेलियाई पौधे ज़हरीले सुगंधित तेल पैदा करते हैं जो उन्हें नष्ट करने वाले जानवरों को हानि पहुंचाते हैं।

मोनोटर्पीन गंध युक्त पदार्थ होते हैं। नेपीटालेक्टोन (nepetalactone) में कीड़ों को प्रतिकर्षित (repel) करने का गुण होता है। कई मोनोटर्पीनों में, जो मिश्रित पदार्थों के रूप में सुगंधित तेलों में पाए जाते हैं, बैक्टीरियारोधक (bacteriostatic) तथा बैक्टीरियानाशक गुण होते हैं। ये पौधों को बैक्टीरिया के आक्रमण से बचाते हैं। परंतु इन मोनोटर्पीन पदार्थों का पौधे के अंदर कोई निश्चित कार्य नहीं है।

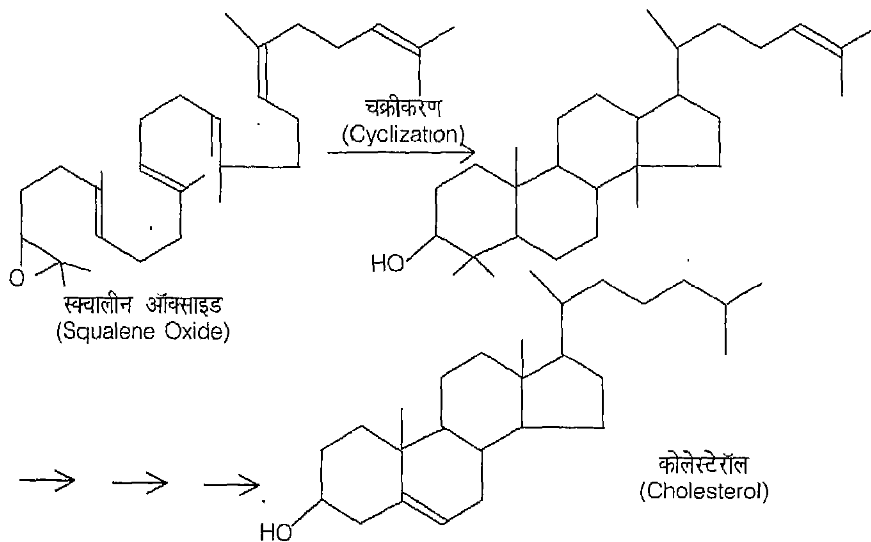
टर्पीन के क्षेत्र में बहुत अन्वेषणात्मक अध्ययन हुए हैं। इसका मुख्य कारण भी यही है कि अनेक टर्पीन पदार्थों में मनुष्य के उपयोग के लिए लाभदायक गुण उपस्थित हैं। कई टर्पीनों में कीट किशोर हॉर्मोन (Insect Juvenile Hormone) की सक्रियता है तो कुछ एन्टीफीडेन्ट (antifeedant) हैं। कुछ सूक्ष्माणुओं को नष्ट कर सकते हैं, तो कई ट्यूमर निरोधी होते हैं। कई टर्पीन कोशिकाओं के लिए विषैले हैं तो कई ल्यूकीमिया की औषधि सिद्ध हुए हैं। रोडोडेन्ड्रॉन (rhododendron) में पाया जाने वाला बेटुलिनिक अम्ल (betulinic acid) कैंसररोधी होता है। प्रिस्टिमेरा इंडिका (pristimera indica) की जड़ों में प्रिस्टिमरीन (prestimerin) नामक पदार्थ पाया गया है जो विषैला परंतु तीव्र ट्यूमर निरोधी गुण रखता है। यूफॉर्बिया जीनस (Euphorbia genus) के पौधों में कई जटिल रासायनिक संरचना वाले डाइटर्पीन होते हैं जिनमें जैविक सक्रियता पाई जाती है और जो अन्य पदार्थों के साथ मिलकर कैंसर को जन्म दे सकते हैं।

स्टेरॉयड्स (Steroids)

स्टेरॉयड उन पदार्थों का एक समूह है जिनमें परस्पर संरचनात्मक समानता पाई जाती है। ये पौधों तथा जीवधारियों में समान रूप से पाए जाते हैं। इस समूह के अंतर्गत अनेक पदार्थ आते हैं जैसे स्टेरॉल (sterol), विटामिन डी, हॉर्मोन, ऐल्केलॉइड, सैपोजेनिन, ट्राइटर्पीन, बाइल (bile) अम्ल इत्यादि। इनकी संरचना का मुख्य अंग निम्न वलय समूह है -



चित्र 6.6



चित्र 6.7

कोलेस्टेरॉल (cholesterol) इस समूह का जाना पहचाना पदार्थ है जो जीवधारियों तथा पौधों दोनों में पाया जाता है। पौधों में यह बीज, फल, फूलों के पराग, पत्तियों, छाल, जड़ इत्यादि भागों में पाया जाता है। इसकी उत्पत्ति ट्राइटर्पीन, स्क्वैलीन (squalene) से होती है जिससे स्टेरॉयड पदार्थों की पहचानस्वरूप उक्त संरचनात्मक ढांचे का निर्माण होता है। बाद में इसमें अन्य संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं। यूफॉर्बिया (Euphorbia) वंश के पौधे कोलेस्टेरॉल की ही भांति के पदार्थ बनाते हैं जिनकी मात्र त्रिविम रासायनिक रचना (stereochemistry) ही स्टेरॉयड से भिन्न होती है। इन्हें यूफॉइडस (euphoids) कहा जाता है और कई रसायनज्ञ इन्हें स्टेरॉयड की श्रेणी में नहीं रखते।

कोलेस्टरॉल से ही पौधे कीड़ों के मोल्टिंग हॉर्मोन (molting hormone) की रचना करते हैं। मोल्टिंग हॉर्मोन कीड़ों तथा कई अन्य जीवधारियों के उपपाचन में उस अवस्था में तीव्रता लाते हैं जब उनके नए अंदरूनी आवरण का निर्माण होता है तथा वह अपने बाहृय आवरण को त्यागते हैं। मोल्टिंग उनकी शारीरिक वृद्धि तथा विकास की क्रिया का एक अभिन्न अंग है। फफूंद (mould) डिक्टियोस्टीलियम डिस्कॉइडियम (Dictyostelium discoideum) में रसो-अनुचलनी (chemotactic) हॉर्मोन ऐक्रैसिन (acrasin) पाया जाता है। फफूंद एक्लिया डाईसेक्सुअलाइस (Achlya disexualise) के मादा पौधे एक हार्मोन संश्लेषित करते हैं जो एक स्टेरॉयड पदार्थ है। सैनिटा (Senita) कैक्टस एक स्टेरॉयड का निर्माण करता है जिसे उस पौधे में रहने वाली एक विशेष जाति की मक्खी अपने मोल्टिंग हॉर्मोन में बदल देती है।

स्टेरॉयड उन जैव रसायनों में है जिनकी पहचान काफी समय पूर्व हो चुकी थी। कोलेस्टरॉल (cholesterol) मनुष्यों के पथरी रोग (gallstones) में सन् 1815 में देखे गए थे। अर्गोस्टेरॉल (ergosterol) एरगौट कवक में सन् 1889 में पाया गया। जीवधारियों में स्टेरॉयड प्लाज़्मा की झिल्ली में पाये जाते हैं। स्टेरॉल प्रायः सभी पौधों तथा जीवधारियों में विद्यमान हैं। इन्हें मुख्यतः दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक उन पौधों तथा अन्य सूक्ष्म वनस्पतियों में होते हैं जिनमें प्रकाश संश्लेषण होता है। दूसरे प्रकार के स्टेरॉल उन जीवधारियों में पाए जाते हैं जिनमें प्रकाश संश्लेषण की व्यवस्था नहीं होती। दोनों प्रकार के स्टेरॉल का निर्माण स्क्वैलीन (squalene) के ही माध्यम से होता है, परंतु चक्रीकरण (cyclization) की स्टीरियोकेमिस्ट्री (stereochemistry) भिन्न होती है।

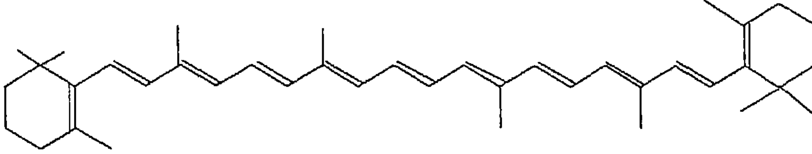
पौधों में पाए जाने वाले कई स्टेरॉयड ऐसे होते हैं जो पानी में साबुन की भांति झाग बनाते हैं। इन्हें सैपोनिन (saponin) कहते हैं। डायोसजेनिन (diosgenin) इसी प्रकार का पदार्थ है तथा डायोस्कोरिया (Dioscorea) प्रजाति के पौधों में पाया जाता है। इसका उपयोग मानव हॉर्मोन प्रोजेस्टरोन (progesterone) के निर्माण में किया जाता है। पौधों के अनेक स्टेरॉयड पदार्थों का हृदय की पेशियों के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन्हें हृदीय ग्लाइकोसाइड्स (cardiac glycosides) कहा जाता है। डिजिटॉक्सिजेनिन (digitoxigenin), जो डिजिटेलिस (Digitalis) प्रजाति के पौधों में पाया जाता है, इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। अत्यंत न्यून मात्रा में ग्लाइकोसाइड औषधि के रूप में उपयोग किए जाते हैं। मेंढक के विष में भी कुछ इस प्रकार के पदार्थ पाए जाते हैं जिन्हें bufadienolides कहते हैं। अनेक पौधों में कुछ ऐल्केलॉइड पाए जाते हैं जो स्टेरॉयड संरचना पर आधारित हैं। ये Hollarrhena,, Futumia तथा Buxus प्रजाति के अंतर्गत आते हैं। भारतीय मूल का पौधा कुरची (Holarrhena antidisenterica) बहुत समय से औषधि के रूप में उपयोग होता आया है। इसकी छाल के मुख्य अवयव conessine तथा holarrhimine हैं जो स्टेरॉयड संरचना के ऐल्केलॉइड हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्टेरॉयड पौधों में पाए जाने वाले रसायनों का एक महत्वपूर्ण समूह है जिसके अंतर्गत जीवधारियों की अनेक शारीरिक क्रियाओं पर गहरा प्रभाव डालने वाले अनेक रासायनिक पदार्थ आते हैं। पौधों के भीतर संश्लेषण की वह अनूठी क्षमता है जिससे वह पांच कार्बन वाले आइसोपेन्टीनाइल पाइरोफॉस्फेट (आई.पी.पी.) से आरंभ कर टर्पीन तथा इसके बहुलक कैरोटीनॉइड, सुगंधित तेल तथा स्टेरॉयड के रूप में स्टेरॉल, अनेक विटामिन, हॉर्मोन, बाइल अम्ल एवं ऐल्केलॉइड का निर्माण कर लेते हैं।

कैरोटीनॉइड्स (Carotenoids)

कैरोटीनॉइड पीले तथा नारंगी रंग के टेट्राटर्पीन पदार्थ हैं जो पौधों तथा जीवधारियों में व्यापक रूप से पाए जाते हैं। जीवधारियों में उपस्थित कैरोटीनॉइड के लिए भोजन के रूप में लिए गए वानस्पतिक पदार्थ ही उत्तरदायी हैं। इनका संश्लेषण आठ आइसोप्रीनॉइड इकाइयों के संयोग से उसी विधि से होता है, जिससे अन्य टर्पीन बनते हैं (पृष्ठ 79-80)। बीच की दो आइसोप्रीन इकाइयों को छोड़ कर जो पूंछ से पूंछ (tail to tail) जुड़ी रहती हैं, अन्य सभी इकाइयां सिर से पूंछ (head to tail) क्रम में जुड़ी रहती हैं। कई कैरोटीनॉइड के एक या दोनों छोरों में

चक्रीय संरचना (rings) होती हैं। कैरोटीन की कार्बन शृंखला में संयुग्मी (conjugated) द्विबंध होते हैं तथा अधिकतर ये सभी द्विबंध ट्रांस - रूप में होते हैं। कैरोटीनॉइड अपने ऑक्सीजन युक्त (कीटोन, ऐल्कोहॉल, ईथर इत्यादि) रूपों में पाए जाते हैं।



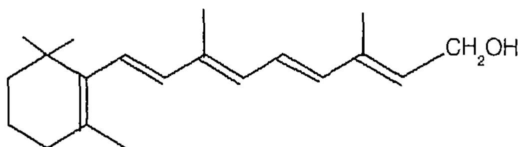
β-Carotene (बीटा-कैरोटीन)

चित्र 6.8

बीटा-कैरोटीन का सबसे उत्तम स्रोत गाजर तथा अल्फाल्फा है। पत्तियों में कैरोटीन प्रोटीन के साथ सम्मिश्र/संकर के रूप में रहता है। यदि बीजों को अंधेरे में अंकुरित किया जाए तो उनमें बीटा-कैरोटीन अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित रहता है, परंतु इन्हें प्रकाश में रखने पर इनकी मात्रा शीघ्र ही बढ़ जाती है। प्रायः सभी बीजों में कैरोटीनॉइड, मुख्यतः बीटा-कैरोटीन, पाए जाते हैं। मक्के के बीजों में तथा टमाटर, सेब, नाशपाती, लाल मिर्च तथा निम्बुकुल (citrus) फलों में इसकी पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। पकने पर फलों का हरा रंग बदल कर चटकीला लाल, पीला इत्यादि हो जाता है। इस क्रिया में कैरोटीनॉइड का संश्लेषण होता है और क्लोरोफिल नष्ट होने लगता है। फलों को डाल से तोड़ने के बाद भी यह क्रिया स्वतंत्र रूप से चलती रहती है।

कैरोटीन क्लोरोफिल के साथ सर्वत्र पाए जाते हैं तथा स्वयं सूर्य की विकिरण ऊर्जा को अधिक कुशलता से ग्रहण कर क्लोरोफिल तक पहुंचाने में सहायता करते हैं। इनका एक और कार्य यह है कि यह पौधों की कोशिकाओं को विकिरणों तथा ऑक्सीकरण से बचाते हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण सहयोग तो इनका पौधों से जीववैज्ञानिक संबंध हैं। फूलों के आकर्षक रंग कीड़ों को आकृष्ट कर परागण में सहयोग देते हैं। पके फलों के तेज़ रंग इन्हें स्पष्ट दृष्टिगोचर कर देते हैं और उन पक्षियों या जानवरों को आमंत्रित करते हैं, जो उन्हें खा कर बीजों को अगली पीढ़ी के पौधों के लिए बिखेर दें।

बीटा-कैरोटीन भोजन के साथ आंतों में जाकर विटामिन ए में बदल जाता है। इसीलिए इसे प्रोविटामिन-ए भी कहते हैं। बीटा-कैरोटीन के एक अणु से विटामिन ए के दो अणु प्राप्त होते हैं।



चित्र 6.9 : विटामिन ए

विटामिन ए जानवरों में विकास के लिए आवश्यक है। यह उनमें रोगों से बचाव की क्षमता पैदा करता है। यह कई वनस्पतियों तथा मछलियों के यकृत से प्राप्त तेलों में पाया जाता है। इसकी कमी से रतौंधी (night blindness) रोग हो जाता है। फलस्वरूप रोगी को कम प्रकाश में दिखाई नहीं देता।

7

वानस्पतिक विष एवं एलीलोरसायन

वनस्पतियों के विषैले पदार्थ

वनस्पति अनेक ऐसे पदार्थों का सृजन करती है जो मनुष्य तथा पशुओं के लिए हानिकारक होते हैं। ऐसे कुछ रासायनिक पदार्थ तो अनेक पौधों में स्वाभाविक रूप से पाए जाते हैं परंतु कभी-कभी उनकी उत्पत्ति केवल विशेष अवस्थाओं में ही होती है। पौधों में इनकी क्या भूमिका है, यह पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है। संभवतः यह जनक पौधों में किसी विशेष आवश्यकता की पूर्ति करते हों। यह भी संभव है कि इनका उद्‌देश्य पौधों को हानि पहुंचाने वाले कीड़ों अथवा पशु-पक्षियों से बचाव करना हो। प्रकृति ने पशु-पक्षियों को भी यह विचित्र क्षमता दी है कि वह हानिकारक पौधों को पहचान सकते हैं। मनुष्य भी अपनी स्वाभाविक बुद्धि तथा अनुभवों से सीखता है तथा अपने उपयोग के लिए अवांछनीय वानस्पतिक द्रव्यों से दूर रहने की चेष्टा करता है। फिर भी यदा-कदा दुर्घटनाएं हो जाया करती हैं।

वनस्पतियों में सबसे अधिक विषैले पदार्थों में ऐल्केलॉइड (alkaloid) एक हैं। यह एक बहुत बड़ा वर्ग है जिसके अंतर्गत हज़ारों पदार्थों का अध्ययन किया जा चुका है। मनुष्य ने अनादि काल से इनका प्रयोग विष तथा औषधियों के रूप में किया है। यूनानी दार्शनिक सोक्रेटीज़ को हेम्लॉक (Conium maculatum) नामक पौधे का विष देकर मारा गया था। दक्षिणी अमेरिका के आदिवासी अपने तीरों को विष में बुझाने के लिए स्ट्रिक्नॉस टॉक्सीफेरा (Strychnos toxifera) नामक वृक्ष से क्यूरेर (curare) प्राप्त किया करते थे। प्रायः सभी ऐल्केलॉइडों में शारीरिक क्रियाशीलता (physiological activity) पाई जाती है। ऐल्केलॉइड

नाइट्रोजन युक्त विषमचक्रीय (heterocyclic) तथा क्षारीय पदार्थ होते हैं परंतु इस परिभाषा के अपवाद स्वरूप भी कई पदार्थ इस श्रेणी में रखे जाते हैं। रासायनिक संरचना की दृष्टि से अनेक ऐल्केलॉइड बहुत जटिल होते हैं। कभी यह धारणा थी कि इतने जटिल अणुओं का निर्माण केवल बड़े पौधे ही कर सकते हैं परंतु धीरे-धीरे इसके अनेक अपवाद सामने आए तथा कवक (fungi) और बैक्टीरिया जनित कई ऐल्केलॉइड भी प्राप्त किए गए। आज का वानस्पतिक रसायनज्ञ अनेक पौधों और उनकी प्रजातियों की छानबीन में लगा है, जिन्हें जनश्रुति के आधार पर औषधियों में स्थान मिला है या जो ज़हरीले होते हैं, अथवा जो केवल सुदूर, दुर्गम या आदिवासी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। ऐल्केलॉइड, पौधों के प्रायः सभी भागों जैसे बीज, जड़ों, फल, पत्तियों या छाल से प्राप्त किए गए हैं। निम्न तालिका में कुछ सुपरिचित ऐल्केलॉइड समूहों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है –

सारणी 7.1

पौधे/जाति	मुख्य ऐल्केलॉइड	गुण
1. कोका (coca)	कोकेन (cocaine)	स्थानीय संवेदनाहारक (local anesthetic), narcotic द्रव्य
2. धतूरा	एट्रोपीन (atropine)	antispasmodic, mydri-atic (आंख की पुतली फैलाने वाला)
3. तम्बाकू	निकोटीन	कीटनाशक, कैंसर को जन्म देने वाला।
4. हेम्लॉक (hemlock)	कोनाइन (coniine)	तीव्र विष
5. अरंडी (बीज)	रिसिनीन (ricinine)	तीव्र विष
6. सिनेसिओ (Senecio)	सेनीसियोनीन (senecionine)	कैंसर विरोधी द्रव्य
7. सर्पगंधा	रिसर्पीन (reserpine)	रक्तचाप की औषधि
8. सदाबहार	विनब्लास्टिन (vinblastin)	ल्यूकीमिया की औषधि
9. स्ट्रिक्नास नक्स वॉमिका (Strychnos nux vomica)	स्ट्रिकनीन	तीव्र विष

10. सिनकोना (छाल)	क्विनीन (quinine)	मलेरिया की औषधि
11. पौपी	मार्फीन (morphine)	पीड़ा नाशक
	कोडीन (codeine)	कफ नाशक
12. Condodendron	टोबोक्यूरैरीन (tobocurarine)	विष में बुझे तीरों के लिए प्रयोग किया जाता था।
13. Strychnos toxifera	क्यूरेरीन (curarine)	Anticonvulsant
14. Ipecac	इमिटीन (emetine)	वमनकारी तथा expectorant
15. Colchicum	कोलचिसीन (colchicine)	Gout की दवा।
16. Pilocarpus	पिलोकार्पीन (pilocarpine)	आंख के रोगों की औषधि
17. आलू (हरे)	सोलेनीन (solanine)	विष

पौधों में ऐल्केलॉइड का सृजन कैसे होता है ? इस प्रश्न का सरल उत्तर तो यही है कि ऐल्केलॉइडों के बनाने का मार्ग कहीं न कहीं ऐमीनो अम्लों से होकर अवश्य जाता है। अलग-अलग प्रजातियों के ऐल्केलॉइड अलग-अलग ऐमीनो अम्लों से बनते हैं परंतु संश्लेषण की यह क्रिया प्राय: अत्यंत पेचीदा होती हैं। इसके सभी चरणों का सही-सही पता लगाना जटिल समस्या है। फिर भी पौधों में अनेक ऐल्केलॉइडों के प्राकृतिक संश्लेषण की संपूर्ण क्रिया का विवरण ज्ञात किया जा चुका है। पौधों के ऐल्केलॉइडों का संश्लेषण एक गतिशील (dynamic) क्रिया है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐल्केलॉइड उपापचयी क्रिया का अंतिम उत्पाद नहीं हैं वरन यह पौधों में बनने वाले कई पदार्थों के लिए आवश्यक अवयव का काम करते हैं। उदाहरण के रूप में पॉपी के पौधों को यदि मार्फीन दी जाए तो वह इस मार्फीन से कई ऐसे पदार्थों का सृजन कर लेते हैं जो ऐल्केलॉइड नहीं हैं।

केवल ऐल्केलॉइड ही विषैले पदार्थ नहीं होते। कई पौधों में अनेक रासायनिक वर्गों के अन्य पदार्थ भी पाए जाते हैं जो जीवधारियों के लिए हानिकारक होते हैं। Poison ivy तथा Poison oak इत्यादि पौधों की सतह के समीप रेज़िन की भांति कुछ पदार्थ रहते हैं जो पौधों को छूने से त्वचा में अत्यंत कष्टदायक ऐलर्जी (allergy) को जन्म देते हैं। बिच्छू बूटी (nettle) के पत्तों तथा तनों में कोमल रोयें होते हैं। इनके संपर्क में आने पर त्वचा में तीव्र

झनझनाहट होने लगती है। कपास के बिनौलों से तेल निकालने के बाद जो अवशिष्ट बचता है, वह प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट की दृष्टि से पौष्टिक आहार है, परंतु इसमें एक हानिकारक पदार्थ गॉसीपोल (gossypol) पाया जाता है जिसको पृथक करना आवश्यक है। गॉसीपोल मनुष्य, सुअर, भेड़, मुर्गियों तथा मछलियों के लिए हानिकारक है, परंतु गाय व भैंसों के लिए निरापद होता है। कई भोज्य पदार्थों में अधिक मात्रा में ऑक्ज़लेट पाए जाते हैं, जो भोजन में उपस्थित कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहे तथा तांबे जैसे धातुओं की शरीर में शोषण क्रिया में बाधा पहुंचाते हैं। ऑक्ज़ेलेट (oxalate) गुर्दों की पथरी के लिए उत्तरदायी समझे जाते हैं। निम्न सारणी में कुछ साधारण खाद्य पदार्थों और उनमें उपस्थित ऑक्ज़ेलेट की मात्रा दी गई है-

सारणी 7.2 कुछ खाद्य पदार्थ और उनमें उपस्थित ऑक्ज़ेलिक अम्ल

भोज्य पदार्थ	ऑक्ज़ेलिक अम्ल (मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा.)
Gingelly बीज (तिल)	1700
ऐमारन्थ (Amaranth)	772
पालक	652
हरा केला	480
आंवला	296
केसरी दाल	122

सोयाबीन तेल प्रोटीन का उत्तम स्रोत है परंतु इनमें अनेक ऐसे पदार्थ भी पाए जाते हैं जो हानिकारक होते हैं। ट्रिप्सिन निरोधक (Trypsin inhibitor) नामक पदार्थ की उपस्थिति से इसकी प्रोटीन का पाचन नहीं हो पाता। इसकी एक और प्रोटीन हीमैग्लूटिनिन (hemagglutinin) लाल रक्तकणों के लिए घातक होती हैं। इसके अतिरिक्त सोयाबीन में कुछ ऐसे पदार्थ पाए जाते हैं जो विटामिन डी को निष्प्रभावित कर देते हैं। सौभाग्य से यह सभी पदार्थ गरम करने से (प्रेशर कुकर में) नष्ट हो जाते हैं। केसरी दाल का मुख्य हानिकारक पदार्थ बीटा-एन-ऑक्ज़ेलिलऐमीनोऐलानीन (β-N-oxalylaminoalanine) होता है। अधिक मात्रा में इस दाल के उपयोग से पैरों में लकवा हो जाता है। यदि दाल को गर्म पानी में 2-3 घंटा भिगोकर धो लिया जाए तो इस पदार्थ की काफी मात्रा हटाई जा सकती है। कड़वे बादाम,



सेब के बीज तथा कड़वे टैपियोका (tapioca) में उपस्थित विषैले पदार्थ सायनाइड (cyanide) को जन्म देते हैं। गोभी, कच्चे सोयाबीन तथा मूंगफली के लाल छिलकों में कुछ ऐसे पदार्थ पाए जाते हैं जो शरीर में आयोडीन के शोषण में बाधा पहुंचाते हैं और गलगण्ड (goitre) रोग को जन्म देते हैं। 70-80 प्रकार के ऐसे छत्रक (mushroom) की पहचान की जा चुकी है जिनमें phalloidine नामक अत्यंत विषैले जान लेवा पॉलिपेप्टाइड होते हैं।

यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग एक प्रतिशत पौधे विषैले होते हैं। कुछ विषैले पौधे जैसे-जैसे परिपक्व होते जाते हैं उनका विषैलापन बढ़ता जाता है। कई पौधे ऐसे भी होते हैं जो अपनी आरंभिक अवस्था में तो विषैले होते हैं परंतु बाद में प्रभावहीन हो जाते हैं।

एलीलोपैथी (Allelopathy)

पौधों को 'परोपकार की प्रतिमूर्ति' कहा गया है, 'परोपकारार्थ फलन्ति वृक्षाः'। यह कुछ अंशों तक सत्य है क्योंकि वृक्ष अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक भोजन पैदा करते हैं जो जीवधारियों को जीवित रखता है। परंतु यह इतने सहृदय भी नहीं होते। हम जान चुके हैं कि पौधे विषैले पदार्थों का भी सृजन करते हैं परंतु केवल जीवधारियों या जीवाणुओं से बचाव के लिए ही नहीं। इनके शस्त्रागार में रासायनिक युद्ध के लिए ऐसे भी पदार्थ होते हैं जो पास-पड़ोस के पौधों को हानि पहुंचाते हैं। यही नहीं स्वयं अपनी ही जाति के पौधों को भी कभी-कभी यह हानि उठानी पड़ती है। कुछ अवस्थाओं में यह रसायन पौधों को लाभ भी पहुंचा सकते हैं। इस क्रिया को एलीलोपैथी (allelopathy) कहते हैं।

पौधों का यह आचरण 2500 वर्षों से भी अधिक समय से ज्ञात है। 300 वर्ष पुराने एक जापानी आलेख में कहा गया है कि वर्षा तथा ओस के द्वारा पाइनस डेनसीफोलिया (Pinus densifolia) की पत्तियों से घुल कर निकले हुए पदार्थ पेड़ के नीचे उगने वाली फसल को हानि पहुंचाते हैं। लगभग 200 वर्ष पूर्व ऑस्ट्रेलिया के न्यू साउथवेल्स प्रांत में पौधों तथा बीजों की खोज करते हुए एक विद्यार्थी ने यह रिपोर्ट दी कि यूकेलिप्टस के घने जंगलों की धरती में एक प्रकार के तेल की बहुतायत है जो वहां पौधों को उगने नहीं देता। आज हम जानते हैं कि यूकेलिप्टस के पत्तों में 1-5% तक सुगंधित तेलों के रूप में टर्पीन होते हैं। 1926 में जैरट तथा पैट्री (Jarrett and Petrie) ने विक्टोरिया प्रांत के एक जंगल में आग लगने

के बाद देखा कि उस धरती पर उगने वाले नए पौधों में असामान्य वृद्धि हुई। कारण यह था कि आग ने भूमि के सुगंधित तेलों को जला कर नष्ट कर दिया जो बीजों के उगने में बाधा पहुंचा रहे थे।

एलीलोरसायन (allelochemicals) पौधों के हर भाग में पाए जाते हैं परंतु पत्तियां इनका मुख्य स्थान हैं। अधिकतर एलीलोरसायन फ़ीनोलिक, फ्लैवोन, ग्लाइकोसाइड, ऐरोमैटिक हाइड्रॉक्सी अम्ल तथा उनके व्युत्पाद होते हैं। वाष्पशील (volatile) एलीलोरसायन वायु के माध्यम से तथा अन्य रसायन अंततः मिट्टी में मिलकर अपना प्रभाव दिखाते हैं। पौधों के मरने के बाद भी उनमें उपस्थित रसायन मिट्टी में बहुत समय तक प्रभावशाली रहते हैं। एलीलोरसायन पौधों में होने वाली रासायनिक क्रियाओं में बाधा पहुंचाते हैं जिससे बीजों का अंकुरण, प्रकाश संश्लेषण, प्रोटीन संश्लेषण या और किसी भी अत्यंत आवश्यक क्रिया की गति कम हो जाती है। यह सभी लोग जानते हैं कि बहुचर्चित यूकेलिप्टस तथा चीड़ के वृक्षों के नीचे कोई वनस्पति नहीं पनप सकती। यदि देखा जाए तो यह पौधों के अपनी जाति के संरक्षण की दिशा में एक प्रयास है।

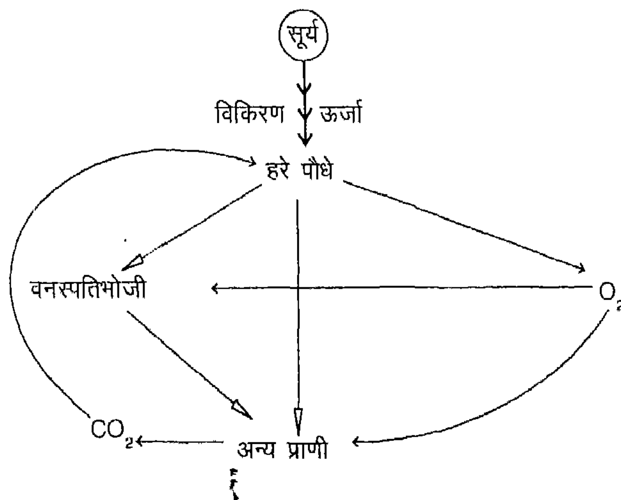
एलीलोपैथी का कृषि तथा जंगलों के संरक्षण तथा विकास से गहरा संबंध है। प्रायः फलों के उद्यानों में वृक्षों के बीच की भूमि में थोड़े समय के लिए अनाज या सब्ज़ियां बो दी जाती हैं। इस संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि इन दोनों का परस्पर एलीलोपैथिक (allelopathic) संबंध कैसा है। इसी प्रकार फसलों के हेर-फेर (rotation) का क्रम क्या होना चाहिए जिससे ऐलीलोपैथिक (allelopathic) दुष्प्रभावों से बचा जा सके। आज के किसान के पास इन प्रश्नों का समुचित उत्तर हो तभी खेती, बागवानी तथा सामाजिक वानिकी से अधिक से अधिक उत्पादन का लाभ मिल सकता है।

8

विविध वानस्पतिक रसायन

विटामिन

प्रकृति ने वनस्पति और जीवजगत का पारस्परिक संबंध ऐसा बनाया है कि मनुष्य तथा अन्य जीवधारी जीवित रहने के लिए अंततः वनस्पति पर निर्भर रहते हैं चाहे वह भोजन के रूप में हो या सांस लेने के लिए ऑक्सीजन हो। दूसरी ओर पौधों को प्रकृति प्रदत्त वायुमंडल की गैसें, पृथ्वी के खनिज तथा सूर्य का प्रकाश मात्र ही चाहिए।

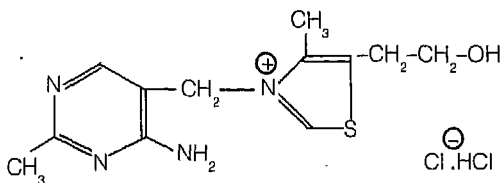


चित्र 8.1

पौधे न केवल कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा पैदा करते हैं जिनके आधार पर प्राणिमात्र जीता है, हमें विटामिन की आपूर्ति के लिए भी पौधों पर ही आश्रित रहना पड़ता है क्योंकि विकास की सीढ़ी में सबसे ऊपर रहने पर भी हमारा शरीर इनका उत्पादन स्वयं नहीं कर सकता।

विटामिन वह पदार्थ हैं जो प्राणिमात्र के जीवन, शारीरिक विकास तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। विटामिन की कमी होने पर अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं जो घातक भी हो सकते हैं। प्रारंभिक अवस्था में ये रोग प्रचुर विटामिन युक्त भोजन करने पर दूर हो जाते हैं। घुलनशीलता के आधार पर विटामिन दो भागों में बांटे जाते हैं। एक वह जो जल में घुलनशील हैं और दूसरे वह जो जल में नहीं घुलते। जल में घुलने वाले विटामिन बी वर्ग के विटामिनों को बी$_1$, बी$_2$ इत्यादि नाम दिए गए हैं। इस वर्ग के पदार्थों को विटामिन बी कॉम्प्लेक्स (complex) भी कहते हैं। अन्वेषणों के आधार पर यह पाया गया कि अनेक विटामिन शरीर में कोएंज़ाइम (coenzyme) के रूप में काम करते हैं। यह वे पदार्थ हैं जिनकी उपस्थिति के बिना कई एंज़ाइम अपना कार्य नहीं कर सकते। इसीलिए विटामिन भोजन का एक आवश्यक अंग हैं।

थायमीन (विटामिन बी$_1$) चावल के बीजों के बाह्य आवरण से प्राप्त किया गया था। इसकी कमी से बेरी-बेरी रोग हो जाता है। विटामिन बी$_1$ प्रायः सभी पौधों में पाया जाता है, परंतु फलों तथा हरी सब्ज़ियों में इसकी मात्रा बहुत कम होती है। फली वाले (leguminous) पौधों के बीजों तथा गुठलियों (nuts) में तुलनात्मक रूप में यह अधिक पाया जाता है। गेहूं तथा जौ के अंदर यह 4-6 मिलीग्राम प्रति ग्राम तक होता है।

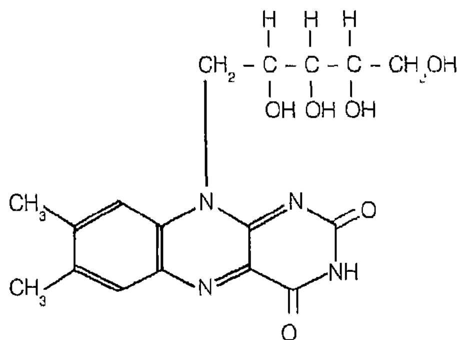


विटामिन बी$_1$

चित्र 8.2

थायमीन अपने पाइरोफॉस्फेट के रूप में एक कोएंज़ाइम का काम करता है। ये दोनों मिलकर जैवरसायनों में से -COOH समूह को हटा देते हैं। ब्रैकन नामक फर्न (fern) खाने पर जानवरों में थायमीन की कमी हो जाती है और वह बीमार पड़ जाते हैं। इसका कारण यह है कि इस फर्न में थायमीन को नष्ट करने वाली एंज़ाइम, थायमीनेज़ उपस्थित रहती है।

राइबोफ्लेविन (Riboflavin, विटामिन बी$_2$) की खोज बीसवीं सदी के तीसरे दशक में हुई। यह फलों में बहुत थोड़ी मात्रा में पाया जाता है। हरी सब्ज़ियों, मूंगफली, फ्रेंचबीन तथा सोयाबीन में तुलनात्मक रूप से यह अधिक होता है। फूलों के पराग और केसर (saffron) में यह सबसे अधिक पाया जाता है। कई अनाजों, मटर तथा दालों के बीजों में अंकुरणकाल में राइबोफ्लेविन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है, अतः ऐसे बीज भोजन में इस विटामिन के अधिक उपयोगी स्रोत हैं। इसका एक अर्थ यह भी हुआ कि बीजों के अंकुरण काल में जब उपापचयी क्रियात्मकता अत्यंत तीव्र हो जाती है, वनस्पति को इसकी अधिक आवश्यकता होती है।



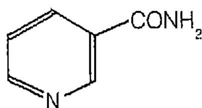
राइबोफ्लेविन (Riboflavin)

चित्र 8.3

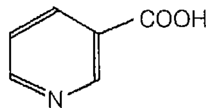
राइबोफ्लेविन दो मुख्य कोएंज़ाइम के रूप में काम करता है। एक है FMN या फ्लेविन मोनोन्यूक्लिओटाइड (flavin mononucleotide) तथा दूसरा है FAD या फ्लेविन ऐडेनीन डाइन्यूक्लिओटाइड (flavin adenine dinucleotide)। कई एंज़ाइमों के साथ मिलकर ये

महत्वपूर्ण ऑक्सीकरण प्रक्रियाओं में भाग लेते हैं तथा कार्बोहाइड्रेट के उपपाचन के लिए आवश्यक हैं।

निकोटिनैमाइड (Nicotinamide) तथा निकोटिनिक अम्ल विटामिन बी समूह का एक और विटामिन है, जिसकी कमी से मनुष्य में पेलाग्रा (pellagra) रोग हो जाता है। यह विटामिन जिन पदार्थों में पाया जाता है, बढ़ती हुई मात्रा के अनुसार वह हैं — फल, सूखे मेवे, फलीदार सब्ज़ियों के बीज, अनाज, परागकण।



(निकोटिनैमाइड)

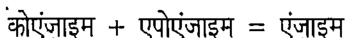


(निकोटिनिक अम्ल)

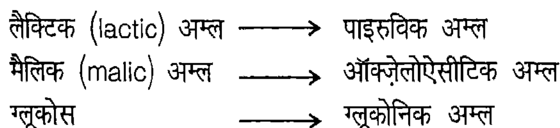
चित्र 8.4

यह विटामिन निकोटिनैमाइड ऐडेनीन डाइन्यूक्लिओटाइड (nicotinamide adenine dinucleotide, NAD) तथा निकोटिनैमाइड ऐडेनीन डाइन्यूक्लिओटाइड फॉस्फेट (nicotinamide adenine dinucleotide phosphate, NADP) के रूप में कार्बोहाइड्रेट के उपपाचन के लिए प्रमुख कोएंज़ाइम है। कोएंज़ाइम क्या है इसको समझ लेना आवश्यक है।

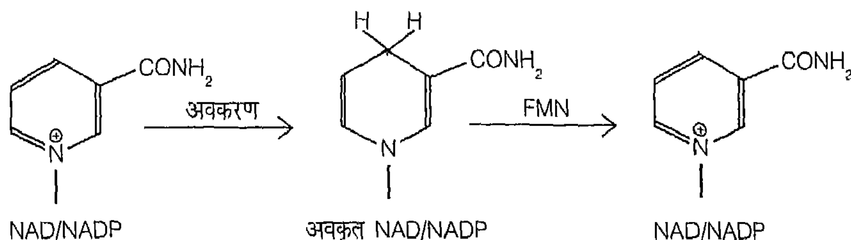
एपोएंज़ाइम (Apoenzyme) वह पदार्थ हैं जो कोएंज़ाइम के साथ संयोग कर सक्रिय एंज़ाइम की रचना करते हैं -


कोएंज़ाइम + एपोएंज़ाइम = एंज़ाइम

NAD तथा NADP एपोएंज़ाइमों के साथ संयोग कर कई सक्रिय एंज़ाइम बनाते हैं जो अनेक पदार्थों के बायोऑक्सीकरण के लिए उत्तरदायी हैं, जैसे -


लैक्टिक (lactic) अम्ल ⟶ पाइरुविक अम्ल
मैलिक (malic) अम्ल ⟶ ऑक्ज़ेलोऐसीटिक अम्ल
ग्लूकोस ⟶ ग्लूकोनिक अम्ल

इन सभी क्रियाओं में एन.ए.डी. तथा एन.ए.डी.पी. के अणुओं के पिरिडीन वलय का रासायनिक अवकरण हो जाता है। एफ.एम.एन. इस अवकृत वलय को ऑक्सीकृत कर पुनः एन.ए.डी. या एन.ए.डी.पी. बना देता है -

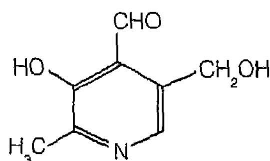


चित्र 8.5

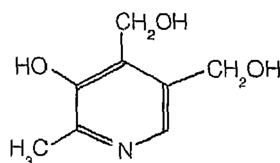
NAD को NAD^+ तथा NADP को $NADP^+$ भी लिखा जाता है क्योंकि इनके अणुओं में पिरिडीन वलय धनायनी है। इसी प्रकार अवकृत NAD को NADH तथा अवकृत NADP को NADPH भी लिखते हैं क्योंकि पिरिडीन वलय में अब एक अतिरिक्त हाइड्रोजन उपस्थित है। NADH तथा NADPH अवकारक पदार्थ हैं और यह समझा जाता है कि ग्लूटाथायोन (ऐमीनो अम्ल cysteine युक्त एक महत्त्वपूर्ण ट्राइपेप्टाइड) तथा ऐस्कॉर्बिक अम्ल (विटामिन सी) को अवकृत रूप में रखने में इन दोनों की मुख्य भूमिका है। हम देख चुके हैं कि वसीय अम्लों के जैव संश्लेषण में (पृष्ठ 70-72), ऐमीनो अम्लों के संश्लेषण के लिए नाइट्रेट के माध्यम से नाइट्रोजन उपलब्ध कराने में (पृष्ठ 44-45), सल्फेट के माध्यम से सल्फर युक्त ऐमीनो अम्लों के संश्लेषण में (पृष्ठ 46), फोटोइलेक्ट्रॉन ट्रांसफर की क्रिया में ए.डी.पी. को ए.टी.पी. में बदलने की अत्यंत महत्त्वपूर्ण क्रिया में (पृष्ठ 12), कैलविन चक्र में (पृष्ठ 14), हैच-स्टैक चक्र (पृष्ठ 16) में कोएंज़ाइम आवश्यक पदार्थ हैं।

अनाजों के बीजों में अंकुरण काल में निकोटिनिक अम्ल की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। यह देखा गया है कि पौधे ऐमीनो अम्ल ट्रिप्टोफेन (tryptophan) से निकोटिनिक अम्ल का निर्माण करते हैं।

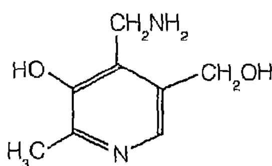
पिरिडॉक्सिन (Pyridoxine या विटामिन बी$_6$), विटामिन बी समूह का सदस्य है जिसके अणु में भी पिरिडीन वलय होती है। इसके अभाव में डर्मेटाइटिस (dermatitis) रोग हो जाता है। विटामिन बी$_6$ फलों, सब्ज़ियों, अनाज तथा फूलों के पराग में तीन परस्पर संबंधित पदार्थों, I, II तथा III के रूप में मिलता है।



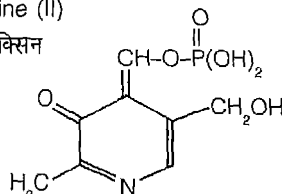
Pyridoxal (I)
पिरिडॉक्सल



Pyridoxine (II)
पिरिडॉक्सिन



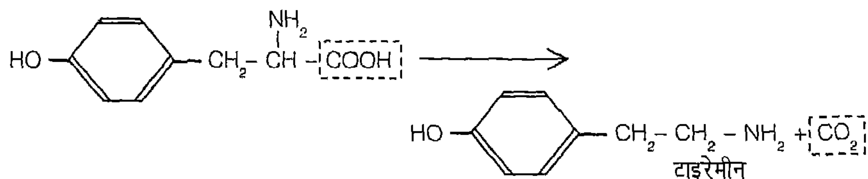
Pyridoxamine (III)
पिरिडॉक्सेमीन



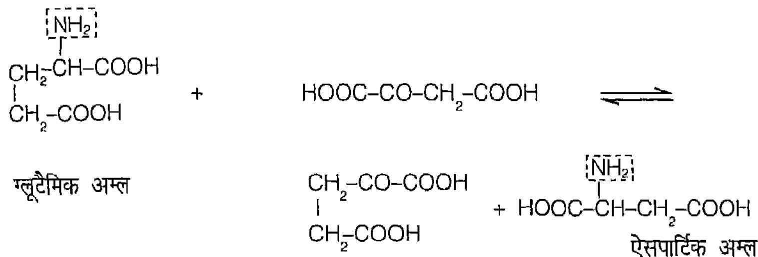
Pyridoxal Phosphate (IV)
पिरिडॉक्सल फॉस्फेट

चित्र 8.6

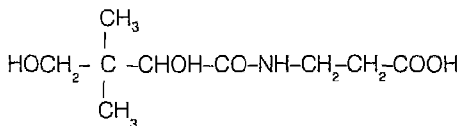
बीजों के अंकुरण के समय विटामिन बी$_6$ की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। पिरिडॉक्सल फॉस्फेट (Pyridoxal phosphate) के रूप में यह ऐमीनो अम्ल कार्बोक्सलहरण (amino acid decarboxylase) के लिए कोएंज़ाइम (coenzyme) का कार्य करता है। इस क्रिया में ऐमीनो अम्ल अपना कार्बोक्सल समूह (-COOH) खो देते हैं। टाइरोसीन से टाइरेमीन तथा हिस्टिडीन से हिस्टेमीन प्राप्त होते हैं -



कई ट्रांसऐमिनेज़ एंज़ाइमों के लिए भी यह कोएंज़ाइम का काम करता है। निम्न उदाहरण में ग्लूटैमिक अम्ल का ऐमीनो समूह, ऑक्ज़ेलोऐसीटिक अम्ल में स्थानांतरित होकर ऐस्पार्टिक अम्ल बनाता है –



पैन्टोथेनिक अम्ल (Pantothenic acid) प्रायः पौधों के हर भाग में पाया जाता है। फल, हरी सब्ज़ियां, फलीदार सब्ज़ियां, अनाजों तथा फूलों के पराग में न्यूनाधिक मात्रा में इसकी उपस्थिति आंकी गई है। अनाज के बीजों के अंकुरण काल में इसकी मात्रा में वृद्धि हो जाती है। यह कोएंज़ाइम A (CoA) का एक भाग है और इस रूप में यह कार्बोहाइड्रेट तथा वसा के लिए

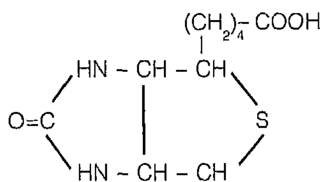


पैन्टोथेनिक अम्ल (Pantothenic acid)

अत्यंत आवश्यक पदार्थ है। वास्तव में ऐसिल समूह (R–CO–) के स्थानांतरण होने वाली जैवरासायनिक क्रियाएं कोएंज़ाइम के ही माध्यम से होती हैं चाहे वह पौधों में हों या जीवधारियों में हों।

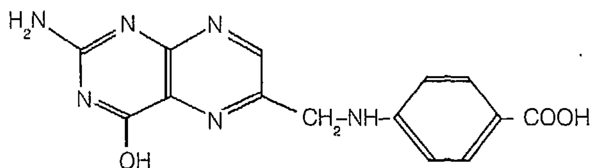
बायोटिन (Biotin) वह विटामिन है जो जीवधारियों के विकास के लिए आवश्यक पदार्थ है। फलों, हरी सब्ज़ियों तथा सूखे मेवों में यह कम मात्रा में पाया जाता है। अन्य विटामिनों

की भांति बायोटिन भी पराग में सबसे अधिक पाया जाता है। बायोटिन का संबंध प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बनडाइऑक्साइड के स्थायीकरण होने वाली क्रियाओं से जोड़ा गया है। बायोटिन संभवतः ऐडीनिलिक अम्ल के यौगिक के रूप में क्रिया करता है।



बायोटिन (Biotin)

फोलिक अम्ल (Folic acid) नामक विटामिन सबसे पहले पालक से प्राप्त किया गया था। कुछ अंशों तक यह फलों तथा अन्य हरी सब्ज़ियों में भी पाया जाता है परंतु परागकणों में फोलिक अम्ल नहीं पाया जाता। इसकी मात्रा बीजों के अंकुरण काल में बढ़ जाती है। वास्तव में फोलिक अम्ल विटामिनों का एक समूह है जो टैरोइक अम्ल (pteroic acid) के व्युत्पाद हैं –

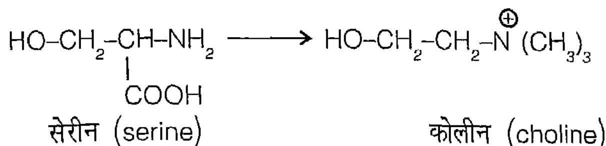


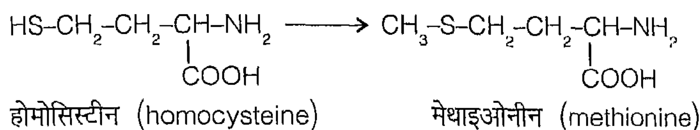
टैरोइक अम्ल (pteroic acid)

चित्र 8.7

एक मुख्य फोलिक अम्ल, टैरोआइलग्लूटैमिक अम्ल है। विटामिन बी$_{12}$ के सहयोग से यह जैवरासायनिक मेथिलीकरण (biochemical methylation) में काम आता है। सेरीन

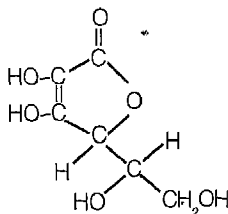
(serine) से कोलीन (choline) तथा होमोसिस्टीन (homocysteine) से मेथाइओनीन (methionine) बनने की क्रिया में फोलिक अम्ल आवश्यक पदार्थ है –





विटामिन बी$_{12}$ (Cobalamine, कोबेलैमीन) एक अत्यधिक जटिल रासायनिक संरचना वाला विटामिन है। यह सूक्ष्म मात्रा में सोयाबीन मक्का, गेहूं के बीजों तथा हरी सब्ज़ियों में पाया जाता है। यह कोबाल्ट युक्त एकमात्र पदार्थ है जो जीवधारियों के लिए आवश्यक है और जिसकी कमी से प्रणाशी रक्ताल्पता (pernicious anaemia) हो जाती है। कई कोएंज़ाइम ऐसे हैं जिनमें विटामिन बी$_{12}$ पाया जाता है और इनके तथा एंज़ाइमों के सहयोग से शरीर में होने वाली अनेक आवश्यक जैवरासायनिक क्रियाएं संपन्न होती हैं। यह समझा जाता है कि संभवतः विटामिन बी$_{12}$ पौधों में भी कुछ इसी प्रकार की क्रियाओं के कार्यान्वयन में सहायता दे सकता है।

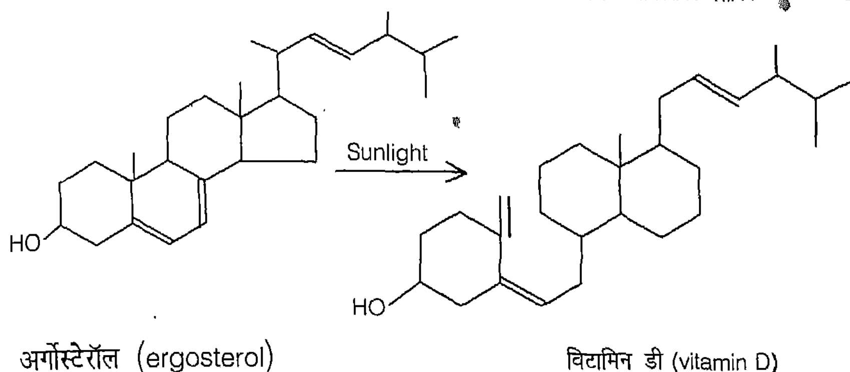
ऐस्कॉर्बिक अम्ल (Ascorbic acid, विटामिन सी) एक अन्य विटामिन है जो पानी में घुलनशील है। यह स्कर्वी (scurvy) रोग को दूर करता है। नाविक लोग, जिन्हें बहुत समय तक ताज़े फल तथा सब्ज़ियां खाने को नहीं मिलती थीं, इस रोग से पीड़ित रहते थे। यह भी देखा गया कि प्रचुर मात्रा में ये वस्तुएं मिलने पर रोग से मुक्ति मिल जाया करती थी। सन् 1928 में विटामिन सी, संतरे तथा गोभी के रस से प्राप्त किया गया। वैसे तो प्रायः सभी फलों में विटामिन सी पाया जाता है, निम्बुकुल (citrus) के फल तथा रसभरी में इसकी मात्रा अधिक होती है। बीजों तथा काष्ठ के अतिरिक्त पौधों के प्रायः सभी भागों में विटामिन सी पाया



विटामिन सी
चित्र 8.8

जाता है। पौधों में इसका निर्माण ग्लूकोज़, गैलेक्टोज़, सूक्रोस, मैनोज़ इत्यादि अनेक कार्बोहाइड्रेट पदार्थों से होता है। जीवधारियों में किए गए प्रयोगों से पाया गया है कि विटामिन सी का संबंध निम्न जैवरासायनिक क्रियाओं से है – टाइरोसीन उपपाचन, कोलैजन (collagen) का संश्लेषण, ट्रिप्टोफेन तथा टाइरोसीन ऐमीनो अम्लों का हाइड्रोक्सलेशन (hydroxalation), फोलिक अम्ल से टेट्राहाइड्रोफोलिक अम्ल का बनना इत्यादि।

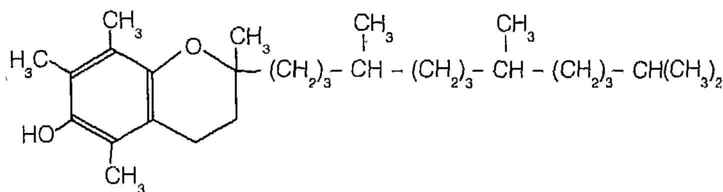
विटामिन डी (Vitamin D, calciferol) जल में अघुलनशील विटामिन है। इसकी कमी से बच्चों में रिकेट्स (rickets) हो जाता है। इस रोग में हड्डियों में कैल्शियम का संग्रहित होना कम हो जाता है, जिससे हड्डियां कमज़ोर और लचीली होकर टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं। कॉड (cod) या अन्य मछलियों के यकृत से प्राप्त तेल, जिसमें यह विटामिन होता है, खाने पर इस रोग से बचा जा सकता है। पौधों में इस विटामिन के पाए जाने के उदाहरण बहुत कम हैं परंतु उनमें अर्गोस्टेरॉल (ergosterol) नामक पदार्थ पाया जाता है, जो सूर्य के प्रकाश में विटामिन डी में परिवर्तित हो जाता है। कई वानस्पतिक तेलों में अर्गोस्टेरॉल होता है। ऐसे तेल भोजन के रूप में लेने पर शरीर में जो अर्गोस्टेरॉल पहुंचता है, धूप का सेवन करने पर वह विटामिन डी में परिवर्तित हो जाता है –



चित्र 8.9

विटामिन डी के अंतर्गत कई विटामिनों की खोज हो चुकी है। रासायनिक रूप से ये सब स्टेरॉयड्स (steroids) हैं। पौधों और स्टेरॉयड का पारस्परिक संबंध स्टेरॉयड के संदर्भ में अन्यत्र (पृष्ठ 86) दिया गया है।

विटामिन ई (E, Tocopherol) जल में अघुलनशील विटामिन है। विटामिन ई के अंतर्गत कई परस्पर संबंधित विटामिन आते हैं, जिनमें अल्फा-टोकॉफेरॉल (α-tocopherol) मुख्य है—



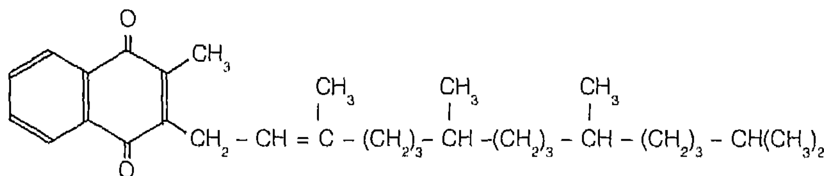
अल्फा-टोकॉफेरॉल (α – Tocopherol)

चित्र 8.10

यह मुख्य रूप से वानस्पतिक तेलों में पाए जाते हैं। गेहूं के जर्म (germ) का तेल, सोयाबीन, मक्का और कपास के बीजों के तेल, विटामिन ई के मुख्य स्रोत हैं। हरी सब्ज़ियों तथा फलों में भी कुछ मात्रा में विटामिन ई पाया जाता है।

जीवधारियों तथा पौधों में विटामिन ई की उपयोगिता संभवतः कोएंज़ाइम क्यु या यूबीक्विनोन (ubiquinone) के जैव संश्लेषण से संबंधित है। विटामिन ई एक प्रतिऑक्सीकारक (antioxidant) पदार्थ के रूप में भी कार्य करता है। पौधे विटामिन ई का जैव संश्लेषण ऐमीनो अम्ल टाइरोसीन तथा फेनिलएलेनीन से करते हैं। सोलह कार्बन वाली कार्बन शृंखला का संश्लेषण उसी मार्ग से होता है जिससे पौधों में पॉलिटर्पीन बनते हैं (पृष्ठ 80)।

जल में अघुलनशील विटामिन के एक अन्य विटामिन है। इसकी कमी होने से रक्त में प्रोथ्रॉम्बिन नामक पदार्थ नहीं बन पाता तथा रक्त के जमने (clotting) के समय में वृद्धि हो जाती है। ऐसी स्थिति में साधारण घावों या शरीर के अंदर किसी विशेष कारण से हुआ रक्तस्राव बंद नहीं हो पाता और स्थिति घातक हो सकती है। इस परिवार का मुख्य विटामिन के$_1$ या फाइलोक्विनोन (phylloquinone) है-



विटामिन के$_1$ (vitamin K_1)

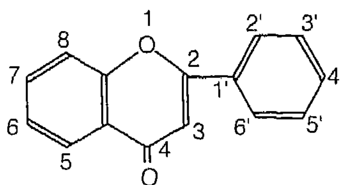
चित्र 8.11

विटामिन के$_1$ प्रायः सभी वृक्षों की पत्तियों तथा बीजों में पाया जाता है। पौधे इसके वलय वाले भाग को शिकिमिक अम्ल (shikimic acid) मार्ग से तथा बीस कार्बन वाली शृंखला को पॉलिआइसोप्रीन के मार्ग से बनाते हैं, परंतु पौधों के लिए इसकी क्या उपयोगिता है, यह स्पष्ट नहीं है।

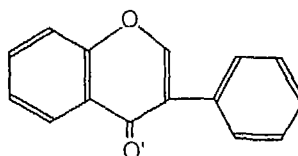
दो पदार्थ जो विटामिन के से मिलते-जुलते हैं, परंतु विटामिन नहीं हैं, अल्फाल्फा से प्राप्त हुए हैं। एक है यूबीक्विनोन (ubiquinone, कोएंज़ाइम क्यु) तथा दूसरा है प्लास्टोक्विनोन। पौधों में कोएंजाइम क्यु इलेक्ट्रॉन के परिवहन तथा प्लास्टोक्विनोन प्रकाश द्वारा फॉस्फेटीकरण (phosphorylation) तथा ऑक्सीजन के उत्पादन से संबंधित हैं।

फ्लैवोनॉइड्स (Flavonoids)

फ्लैवोनॉइड वह रंगीन पदार्थ हैं जो बहुत अधिक विविधता में पौधों में प्रायः सर्वत्र पाए जाते हैं। रासायनिक रूप से ये फीनॉल (phenol) से संबंध रखते हैं। पौधों में इनकी विशेष भूमिका होती है तथा मनुष्यों के लिए अनेक फ्लैवोनॉइड औषधियों के रूप में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। एक प्रकार के फ्लैवोनॉइड चटकीले, लाल, नीले, बैंगनी या गुलाबी रंग के होते हैं। उन्हें ऐन्थोसाइएनिन (anthocyanin) कहते हैं। दूसरे प्रकार के पदार्थ फ्लैवोन या उनके व्युत्पाद होते हैं। इन सबका रचनात्मक आधार निम्न है -



फ्लैवोन (Flavone)

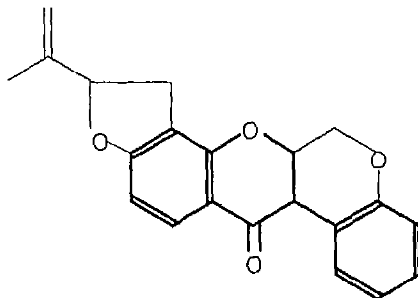


आइसोफ्लैवोन (Isoflavone)

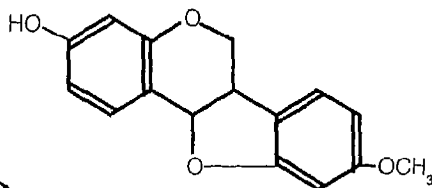
चित्र 8.12

फ्लैवोन का रंग पीला होता है। इसके अणु की रचना में कई फीनॉलिक -OH समूह होते हैं जिसके फलस्वरूप यह जीवित कोशिकाओं के लिए हानिकारक हो सकते हैं। यही कारण है कि फ्लैवोन अधिकतर पेड़ों के अंतः काष्ठ (heartwood) में, जो निर्जीव तंतु है, पाया जाता है। इसकी उपस्थिति में कवक काष्ठ को हानि नहीं पहुंचा सकते। समूह -OH अधिकतर 3, 5, 7, 3′, 4′ तथा 5′ कार्बन में होते हैं। पेन्टिनाइल ($(CH_3)_2C=CH-CH_2-$) समूह 3, 6 तथा 8 कार्बन में पाए जाते हैं। फ्लैवोन के कई –OH समूह शर्करा से जुड़े रहते हैं। ग्लूकोज़ सबसे अधिक पाई जाने वाली शर्करा है। ये शर्करा युक्त पदार्थ (ग्लाइकोसाइड) न केवल जल में अधिक घुलनशील होते हैं, इनका विषैलापन भी कम हो जाता है। यही कारण है कि यह रसदारु (sapwood) तथा छाल में भी पाए जाते हैं।

आइसोफ्लैवोन (Isoflavone) फ्लैवोन से मिलते-जुलते पदार्थ हैं, अंतर केवल फेनिल वलय की स्थिति में है। डैरिस (Derris) पौधे की जड़ों में पाया जाने वाला रोटीनोन (rotenone) एक आइसोफ्लैवोन है। यह एक प्राकृतिक कीटनाशक पदार्थ है। यह समझा जाता है कि पौधों की विकास प्रक्रिया (evolution) में वह कुछ ऐसे पदार्थों का निर्माण करने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं जो उन्हें हानि पहुंचाने वाले सूक्ष्म जीवों के लिए घातक होते हैं। ऐसे पदार्थों को फाइटोऐलेक्सिन (phytoalexin) कहते हैं। रोटीनोन, मेडीकार्पिन (medicarpin) तथा अनेक अन्य आइसोफ्लैवोनॉइड (isoflavonoid) इन पदार्थों के उदाहरण हैं।



रोटीनोन (Rotenone)



मेडीकार्पिन (Medicarpin)

चित्र 8.13

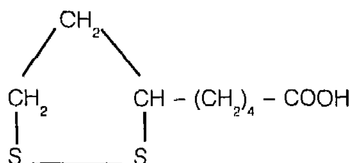
(आइसोफ्लैवोन के मूल आकार को स्पष्ट करने के लिए कुछ बंधों को मोटी रेखाओं से दर्शाया गया है।)

फ्लैवोनॉइड पौधों के प्राकृतिक उपपाचन में शामिल नहीं हैं। इनकी विशेष भूमिका जीववैज्ञानिक ही है विशेषकर उन कीड़ों तथा जानवरों के लिए जो या तो उनमें परागण करते हैं या उन पौधों को भोजन के रूप में लेते हैं। कुछ फ्लैवोनॉइड अपने रंग के कारण तितलियों और मक्खियों को आकर्षित करते हैं जिससे परागण हो सके। कुछ पत्तियों के फ्लैवोनॉइड अपने कड़वे स्वाद के कारण उन कीड़ों (caterpillars) को दूर भगाते हैं जो उन्हें खाने तथा नष्ट करने के लिए आते हैं। इसका दूसरा पहलू भी है। शहतूत की पत्तियों में फ्लैवोनॉल, क्वेर्सिटिन-3-ग्लूकोसाइड (quercetin-3-glucoside) होता है, जिसे रेशम के कीड़े बड़े स्वाद से खाते हैं।

ऐन्थोसाइएनिन (Anthocyanin) का पंद्रह कार्बन वाला छोटा अणु अत्यंत चटकीला रंग लिए होता है। यह रंग भी इतने विविध होते हैं कि हरे रंग को छोड़ कर स्पेक्ट्रम के सभी रंगों वाले ऐन्थोसाइएनिन पौधों में पाए जाते हैं। नई पत्तियां तथा पतझड़ से पूर्व की पत्तियां भी इन्हीं ऐन्थोसाइएनिन के कारण इतनी रंगीन दिखाई देती हैं।

पौधों की प्रयोगशाला के अन्य उत्पाद

यदि हम गंभीरता से देखें तो पाएंगे कि हमारे चारों ओर जो कार्बनिक रसायन विद्यमान हैं उनमें से अधिकांश का संबंध किसी न किसी रूप में पौधों से रहा है। स्वाभाविक है कि इनमें अपार विविधता पाई जाती है। उन मुख्य समूहों का उल्लेख किया जा चुका है जिनका पौधों तथा मनुष्य के जीवन से पृथक्-पृथक् तथा पारस्परिक संबंध काफी गहरा है। अब हम कुछ ऐसे पदार्थों की चर्चा करेंगे जो या तो किसी बड़े समूह में नहीं आते या जो इतने अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं।



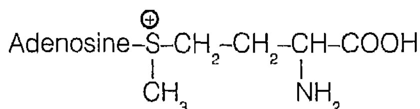
लिपोइक अम्ल (Lipoic acid)

चित्र 8.14

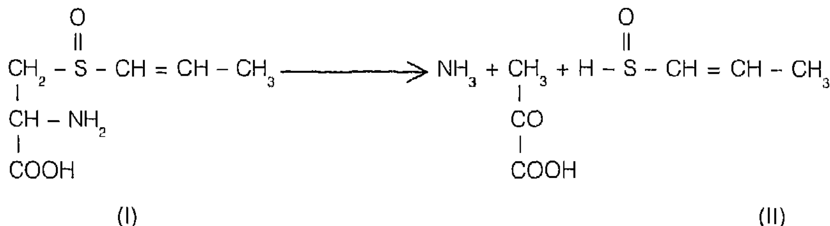
वह पदार्थ जिनमें सल्फर (sulphur) पाया जाता है, विविधता में कम नहीं है। कई ऐमीनो अम्लों, प्रोटीनों, विटामिन, कोएंज़ाइम ए तथा लिपोइक अम्ल में इसकी उपस्थिति के विषय में हम जान चुके हैं। पौधे अनेक कार्बनिक थायोल (–SH समूह वाले पदार्थ), सल्फाइड तथा डाइसल्फाइड तो बनाते ही हैं, टैगेटीस (Tagetes), क्राइसेन्थेमम (Chrysanthemum) तथा कुछ अन्य प्रजातियों के पौधे थायोफ़ीन (thiophene) पर आधारित अनेक पदार्थों का भी निर्माण करते हैं। विषैले छत्रक (mushroom) ऐमेनिटा फैलॉयड (Amanita phalloides) में ऐमेनिटिन (amanitin) तथा फेलॉइडिन (Phalloidin) समूह

के अत्यंत विषैले पेप्टाइड पाए जाते हैं जिनमें सल्फर होती है। विशेष सल्फाइड बंध के रूप में ऐसे उदाहरण असामान्य हैं।

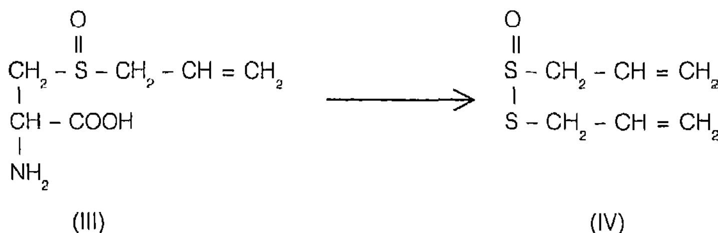
एस-एडनोसिल मेथायोनीन (S–Adenosylmethionine) एक सल्फोनियम पदार्थ है।



पौधों में पाया जाने वाला यह एक मुख्य रसायन है जो tRNA में पाए जाने वाले मेथिल समूह युक्त बेसों की रचना के लिए मेथिल समूह देता है और मेथिल दाता (methyl donor) का काम करता है। हम सभी को प्याज़ काटने पर आंसू आने का अनुभव है। प्याज़ में एक सल्फोक्साइड (I) होता है जो उपस्थित एंज़ाइम के द्वारा प्रोपीनाइल सल्फीनिक अम्ल (II) देता है। यही वह रुलाने वाला पदार्थ है।



लहसुन में (I) का समावयवी (isomer) (III) पाया जाता है जो एंज़ाइम के प्रभाव से (IV) का निर्माण करता है यह लहसुन की विशेष गंध के लिए उत्तरदायी है।

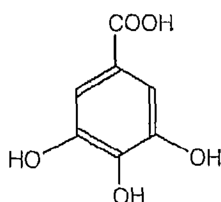


कैरेज़ीनन (Carageenin) नामक प्राकृतिक पॉलिसैकेराइड में कई इकाइयों के -OH समूह अपने सल्फेट एस्टर के रूप में पाए जाते हैं। यदि इस पॉलिसैकेराइड की हाइड्रॉलिसिस करें तो 20-30% सल्फ्यूरिक अम्ल (sulphuric acid) प्राप्त होता है। सरसों के तेल में कई ऐसे सल्फर युक्त ग्लूकोसाइड पदार्थ पाये जाते हैं, जो स्वाभाविक हाइड्रॉलिसिस के उपरांत अनेक कार्बनिक आइसोथायोसाइनेट बनाते हैं।

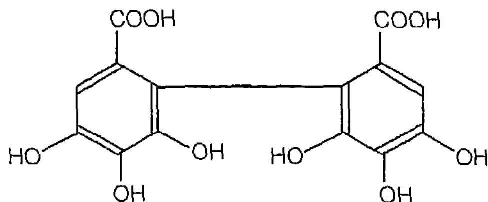
दक्षिणअफ्रीका में पैदा होने वाले पौधे डिकेपीटैलम साइमोसम Dichapetalum cymosum में अत्यंत विषैला फ्लोरोऐसीटिक अम्ल ($F-CH_2-COOH$) होता है।

पौधों में अनेक कार्बनिक अम्ल पाए जाते हैं जो उनमें होने वाले मुख्य उपपाचन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये हैं मैलिक (malic), सिट्रिक (citric), फ्यूमैरिक (fumaric), आइसोसिट्रिक (isocitric), ऐकोनिटिक (aconitic) तथा सक्सिनिक (succinic) अम्ल। ऑक्ज़ैलिक (oxalic) तथा टार्टरिक (tartaric) अम्ल वह अम्ल हैं जो कई फलों में स्वतंत्र या अपने लवणों के रूप में पाए जाते हैं पर इनका पौधों के उपपाचन में संभवतः कोई योगदान नहीं है। हम जानते हैं कि ऐसेटिलीनिक (acetylenic, त्रिबंध वाले) रसायन अत्यंत सक्रिय होते हैं तथा प्रयोगशाला में इनको विशेष क्रियाओं द्वारा ही बनाया जा सकता है। परंतु पौधों की प्रयोगशाला में बने ऐसे अनेक रसायनों की खोज हुई है। मुख्य रूप से कम्पोज़िटी (Compositae) तथा अम्बेलीफेरी (Umbelliferae) प्रजातियों के पौधों में ऐसीटिलिक पदार्थ पाए गए हैं।

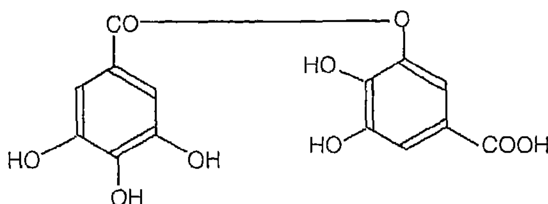
पौधों में पाए जाने वाले टैनिन वह पदार्थ हैं जिन्हें पॉलिफीनॉलों के वर्ग में रखा जाता है। प्रायः ये दो प्रकार के होते हैं। एक वह जो गैलिक (gallic) अम्ल तथा मोनोसैकेराइड (मुख्यतः ग्लूकोज़ या ग्लूसिटॉल) के एस्टर हैं। गैलिक अम्ल के दो अणुओं के ऐरोमैटिक वलय (aromatic rings) आपस में सीधे जुड़े भी हो सकते हैं या दो गैलिक अम्ल के अणुओं में आपस में एस्टर बंध हो सकता है। एस्टर बंधों से निर्मित टैनिन आसानी से हाइड्रोलाइज़ हो जाते हैं, अतः इन्हें हाइड्रोलाइज़ होने वाले टैनिन (hydrolysable tannins) कहते हैं।



गैलिक अम्ल (Gallic acid)



हेक्साहाइड्रॉक्सीडाइफेनिक अम्ल (Hexahydroxydiphenic acid)



गैलॉयल गैलिक अम्ल (Galloyl gallic acid)

चित्र 8.15

टैनिन तथा कच्चे चमड़े (hide) की परस्पर क्रिया से पक्का चमड़ा (leather) बनता है। यह सदियों से प्रयोग में लाई जाने वाली एक रासायनिक क्रिया है। इसके फलस्वरूप चमड़े की प्रोटीन तथा टैनिन आपस में संकर (complex) अणु बना देते हैं और चमड़ा अधिक सुदृढ़ एवं टिकाऊ बन जाता है। यह चमड़े की टैनिंग (tanning) करने की क्रिया है।

पौधों में टैनिन की उत्पत्ति संभवतः अपने कसैले स्वाद तथा प्रोटीनों से संकर बनाने के गुणों से संबंध रखती है। वैज्ञानिकों के एक वर्ग की धारणा है पौधों तथा उन्हें खाने वाले पशुओं का विकास साथ-साथ हुआ। अपनी सुरक्षा के लिए पौधों में टैनिन बना जिससे कि पशु उनके अप्रिय स्वाद के कारण उन्हें न खाएं। मुख की लार (saliva) के एंज़ाइमों के साथ टैनिन के संकर (complex) बनने से एंज़ाइम निष्क्रिय हो जाते हैं तथा भोजन के कार्बोहाइड्रेट पदार्थों की सुपाच्यता नष्ट हो जाती है। इसी आधार पर टैनिन का घोंघानाशक गुण भी काम करता है।



टैनिन, प्रोटीन, पॉलिसैकेराइड तथा क्षारीय कार्बनिक पदार्थों जैसे कैफ़ीन, ऐल्केलॉइड इत्यादि के साथ संकर (complex) बनाता है। संकर (complex) बनाने की क्रिया अधिकतर उत्क्रमणीय (reversible) होती है। परस्पर बंधन हाइड्रोजन बंध तथा जलविरोधी (hydrophobic) बंधों द्वारा बनते हैं।

यह समझा जाता है कि पौधों की शारीरिक (physiological) क्रिया में टैनिन की कोई भूमिका नहीं है। यदि पौधों के लिए टैनिन की कोई उपयोगिता है तो कुछ अंशों में यह कीट-पतंगों, कवक तथा बैक्टीरिया से बचाव के लिए है। कारण यह है कि पौधों के कार्बोहाइड्रेट तथा टैनिन का परस्पर संकर (complex), इन जीवों के एंज़ाइमों से नहीं पचते। यह पाया गया है कि सेलुलेज़, पेक्टिनेज़ तथा ऐमाइलेज़ एंज़ाइम जो लकड़ी को नष्ट कर सकते हैं, टैनिन के द्वारा निष्क्रिय हो जाते हैं।

दूसरे प्रकार के टैनिन द्रवित (condensed) टैनिन हैं यानी इनमें एस्टर बंध नहीं हैं जो जल अपघटित हो जाएँ। स्पष्ट है कि इनकी इकाइयां C–C बंधों द्वारा जुड़ी हैं। ये इकाइयां मुख्यतः प्रोऐन्थोसाइएनिडिन (proanthocyanidin) से बनी हैं।

9

कुछ अपने लिए कुछ दूसरों के लिए

पौधों के स्वनिर्मित विकास नियंत्रक

हमारे शरीर में इसके अंदर होने वाली अनेक विशेष क्रियाओं के लिए कुछ संदेश वाहक रासायनिक पदार्थो की उत्पत्ति होती है। इन्हें हार्मोन (hormone) कहते हैं। प्रायः इन पदार्थों का निर्माण कहीं होता है और इनकी आवश्यकता कहीं और होती है। पौधों में भी उनके विकास को नियंत्रित करने वाले अनेक रसायनों का सृजन करने की क्षमता होती है। पौधे मनुष्य की तुलना में प्रकृति के अधिक समीप हैं और उनकी एक और विशेषता यह है कि उनमें होने वाले अनेक परिवर्तन एक वार्षिक चक्र से प्रभावित होते हैं। ये रसायन पौधों के विकास में तेज़ी लाते हैं, रोकते हैं या फिर किसी और प्रकार से इसमें परिवर्तन लाते हैं। आज पौधों में पांच प्रकार के ऐसे रसायन ज्ञात हैं - ऑक्सिन (auxins), जिबरेलिन्स (gibberellins), साइटोकाइनिन्स (cytokinins), ऐब्सिसिक अम्ल (abscissic acid) तथा एथिलीन (ethylene) गैस।

मनुष्य ने अनादि काल से देखा था कि बीजों में अंकुरण होते ही जड़ पृथ्वी की ओर बढ़ती है तथा अंकुर ऊपर की ओर बढ़ता है। आंधी या किसी अन्य घटना में यदि वृक्ष झुक जाए तो कुछ समय बाद वह फिर घूम कर ऊपर की ओर बढ़ने लगता है (चित्र 9.1)। घर के भीतर उगे हुए पौधे खिड़की या प्रकाश की दिशा की ओर झुक जाते हैं। हमारे यह अनुभव बताते हैं कि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण तथा प्रकाश का पौधों के विकास पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

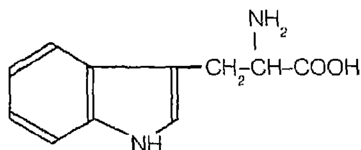
ऑक्ज़िन (Auxin) - इंडोल ऐसीटिक अम्ल (Indole acetic acid, आई.ए.ए.) वह पदार्थ है जो उच्च श्रेणी के पौधों (higher plants) में सर्वत्र पाया जाता है। इसकी उत्पत्ति ऐमीनो अम्ल ट्रिप्टोफेन (tryptophan) से होती है (चित्र 9.2)। परीक्षणों द्वारा पाया गया है कि आई.ए.ए. का उत्तेजक प्रभाव सबसे अधिक तने पर, उससे कम कोपलों पर तथा सबसे कम जड़ों पर होता है। आई.ए.ए. कई पौधों में स्वतंत्र रूप से और कई पौधों में जिबरेलिक अम्ल (GA) के साथ मिलकर परागण (pollination) के उपरांत फलों में विकास को प्रेरित करता है। आई.ए.ए. तथा जी.ए. परस्पर मिलकर तने में ज़ाइलम (xylem) तथा फ्लोएम (phloem) के निर्माण को संतुलित करते हैं। अधिक आई.ए.ए. और कम जी.ए. होने पर ज़ाइलम तथा कम आई.ए.ए. और अधिक जी.ए. होने पर फ्लोएम (pholem) का निर्माण होता है। आई.ए.ए. की मात्रा बढ़ने पर पत्तियों और शाखाओं में एथिलीन (ethylene) का उत्पादन अधिक होता है। आई.ए.ए. द्वारा पौधों के ऊलकों (tissue) में विकास होता है।

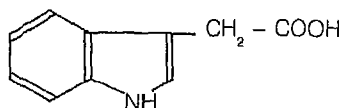


चित्र 9.1 देवदार की अधटूटी डालियां भी ऊर्ध्व दिशा में बढ़ने लगीं।

जिबरेलिन (Gibberellin), डाइटर्पीन समूह के टर्पीन हैं जो प्रायः सभी पौधों में पाए जाते हैं। इस समूह का सबसे अधिक पाया जाने वाला

पदार्थ है जिबरेलिक अम्ल (जी ए$_3$)। औद्योगिक मात्रा में इसका उत्पादन जिबरेला फ्यूजीकूरोय (Gibberella fujikuroi) नामक कवक (fungus) से किया जाता है।

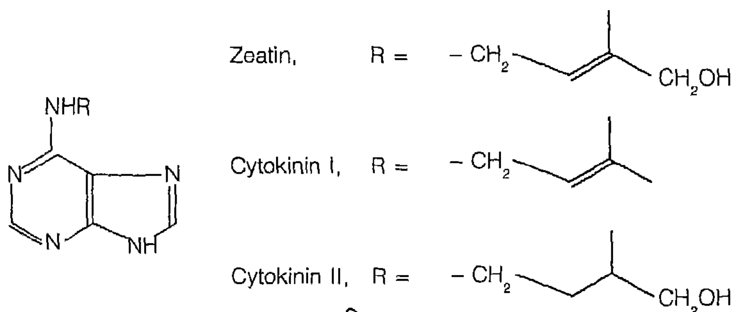




ट्रिप्टोफेन (Tryptophan)　　　　आई.ए.ए. (IAA)

चित्र 9.2

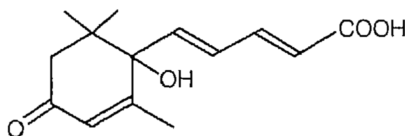
साइटोकाइनिन (Cytokinin) पौधों के उन भागों में पाए जाते हैं जो परिपक्व नहीं हुए हों और जहां अभी तेज़ी से विकास हो रहा हो। वहां कुछ ऐसे पदार्थों के उपस्थित होने क आभास हुआ जो विकास के लिए उत्तरदायी हैं। विकास के अंतर्गत तेज़ गति से कोशिकाअे का विभाजन होता है। नारियल के दुधिया द्रव में तथा कच्चे अपरिपक्व मक्के के बीजों के दूध समान द्रव में इस तरह की सक्रियता विशेष रूप से देखी गई है। सन् 1963 में मक्के (Zea mays) के बीजों में एक ऐसा रसायन पाया गया जो कोशिकाओं के विभाजन के लिए अत्यंत सक्रिय पदार्थ सिद्ध हुआ। इसे ज़िएटिन (zeatin) नाम दिया गया। पांच वर्ष बाद कच्चे नारियल के दूध से दो और सक्रिय पदार्थ प्राप्त किए गए। ये सब ऐडेनीन (adenine) के व्युत्पाद हैं और इनकी रासायनिक संरचनाएं निम्न हैं –



चित्र 9.3

कालांतर में अनेक अन्य साइटोकाइनिन प्राप्त किए गए। इन सबकी विशेषता यह है कि इनमें पांच कार्बन वाली एक शृंखला ऐडेनीन के अणु से जुड़ी है जो टर्पीन पदार्थों के साथ इनके संबंध को दर्शाती है। साइटोकाइनिन पौधों के विकास की चार मुख्य क्रियाओं से जुड़े हैं और यह हैं — (i) कोशिका का विभाजन; (ii) कोशिका की वृद्धि; (iii) कोशिका किस प्रकार की बनेगी, इसका निश्चित होना। यह देखा गया कि अधिक साइटोकाइनिन व कम आई.ए.ए. (IAA) की उपस्थिति में तने का निर्माण करने वाले अंकुर बनते हैं तथा कम साइटोकाइनिन व अधिक आई.ए.ए. (IAA) की उपस्थिति में जड़ बनाने वाले अंकुरों का निर्माण होता है तथा (iv) पत्तों के पुराने होकर गिरने की क्रिया की गति को कम करना।

साइटोकाइनिन पौधों के विभिन्न भागों में पौधों के लिए आवश्यक पदार्थों के संचारण को नियंत्रित करता है। ऐब्सिसिक अम्ल (abscissic acid) ए.बी.ए., पौधों के विकास को अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। कई बीजों का अंकुरण तथा कोपलों (buds) का विकास



ऐब्सिसिक अम्ल (Abscissic acid)

चित्र 9.4

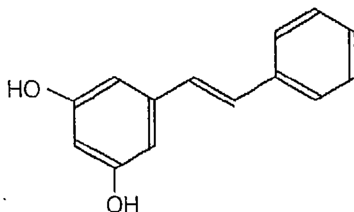
तब तक नहीं होता जब तक उनमें उपस्थित ए.बी.ए. की मात्रा कम न हो जाए या विकास के लिए आवश्यक रसायनों की मात्रा में उचित वृद्धि न हो जाए। इस प्रकार ए.बी.ए. (ABA) इन क्रियाओं लिए विरोधक (inhibitor) का कार्य करता है। शीतकाल आरंभ होने से पहले कई वृक्षों का विकास रुक जाता है इसलिए कोपलें सुप्तावस्था में चली जाती हैं। यह कोपलों को विषम वातावरण से बचाने की एक व्यवस्था है। पौधों के विकास के यह सब नियंत्रक पदार्थ अकेले काम नहीं करते। यह मिलजुल कर ही उसकी विकास संबंधी क्रियाओं को इस प्रकार नियंत्रित करते हैं कि पौधे बदलते वातावरण के अनुसार स्वयं को ढाल सकें।

पौधों का सुरक्षा तंत्र

सभी का अनुभव बताता है कि काष्ठ चाहे जीवित पेड़ों का हो या पेड़ों की लकड़ी से बनी वस्तुओं का हो, धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। कुछ जीवित वृक्ष सैकड़ों वर्ष जीते हैं तथा कुछ 70–80 वर्षों में ही नष्ट होने लगते हैं। यह भी देखा गया है कि वृक्षों के तनों के अंदर का मध्य भाग (heartwood or core) sapwood (heartwood के चारों ओर के तने का भाग) की अपेक्षा सड़ने से कम नष्ट होता है। काष्ठ को नष्ट करने के लिए मुख्य रूप से कवक उत्तरदायी हैं। इन्हें Wood Rot कवक कहते हैं। यह जीवित पेड़ों में जाकर बढ़ते हैं तथा अनेक एंज़ाइमों की सृष्टि करते हैं। यह एंज़ाइम पेड़ों के तंतुओं को नष्ट कर उन्हें घुलनशील पदार्थों में बदल देते हैं। यही पदार्थ कवक की वृद्धि के लिए भोजन हैं। कुछ कवक केवल काष्ठ के सेलुलोस को, दूसरे प्रकार की कवक केवल लिग्निन को और तीसरे प्रकार की कवक सेलुलोस तथा लिग्निन दोनों को अपना भोजन बनाती हैं। Heartwood में अनेक ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो कवक तथा अन्य सूक्ष्माणुओं को बढ़ने से रोकते हैं।

वृक्षों का यह सुरक्षा तंत्र केवल heartwood तक ही सीमित नहीं है। आइए देखें, यह व्यवस्था जो सूक्ष्माणुओं के आक्रमण का रासायनिक युद्ध द्वारा सामना करती है, किस प्रकार वृक्षों को बचाती है। जीवित वृक्ष का पहला सुरक्षा कवच छाल का बाह्य आवरण है। कई वृक्षों की छाल मोटे कॉर्क की पर्त की बनी होती है। यह आंतरिक भागों की मौसम की विषमताओं से रक्षा करती है क्योंकि कॉर्क ताप और जलरोधी होता है। इसके अतिरिक्त यह वृक्षों को भौतिक आघातों से भी बचाता है क्योंकि आघातों को कॉर्क के निर्जीव सेल झेल लेते हैं और अंदर के सजीव तंतु सुरक्षित रहते हैं। छाल, जीवधारियों में त्वचा के समान है जो यदि घाव से आहत न हो, तो जीवाणुओं को प्रवेश नहीं करने देती। पेड़ों को नष्ट करने वाली फंजाई भी इन्हीं घावों से प्रवेश करती है और sapwood के कुछ सेलों को नष्ट कर देती है। वृक्ष अन्य सभी जीवधारियों की अपेक्षा इस पृथ्वी पर रहने के लिए अधिक अनुकूल हैं। कुछ बातों में वह सबसे अधिक विकसित जीवित प्रजाति (species) हैं। वह सबसे बड़े आकार तक वृद्धि करते हैं। उनका जीवनकाल सबसे अधिक होता है। इस जीवन में उन्हें बाहरी कारणों से घाव मिलते रहते हैं, परंतु इन घावों से उन्हें हमेशा संक्रमण हो, यह बात नहीं।

वृक्षों की सुरक्षा की पंक्ति में दूसरा स्थान है उस व्यवस्था का जिसके अनुसार वृक्ष घाव को भरने के लिए तुरंत नए तंतुओं की रचना कर डालते हैं और घाव भर जाता है। साथ ही घाव के चारों ओर अनेक रासायनिक क्रियाएं होने लगती हैं। फलस्वरूप स्टार्च लुप्त हो जाता है जिससे आक्रमणकारी जीवाणुओं को रसद न मिले। साथ ही घाव के आस-पास के क्षेत्र में ऐसे पदार्थ बनने प्रारंभ हो जाते हैं जो कवक को नष्ट कर देते हैं। ये पदार्थ हैं अनेक प्रकार के लिग्निन, स्टिलबीन, रेज़िन अम्ल तथा टैनिन। पाइनस जाति के वृक्षों में कवक के आक्रमण के स्थान के चारों ओर पिनोसिल्विन (pinosylvin) तथा इसके व्युत्पादों का सृजन होने लगता है, जो स्टिलबीन परिवार के सदस्य हैं। इनकी साधारणतः पाई जाने वाली मात्रा में बीस गुना तक वृद्धि देखी गई है।



पिनोसिल्विन (Pinosylvin)

चित्र 9.5

हाइड्रॉक्सीमेटेयरेसिनॉल (hydroxymatairesinol), लिग्नन परिवार का एक रसायन है जो सक्रिय कवक विरोधी (anti-fungal) पदार्थ है और पाइनेसी (Pinaceae) प्रजाति के अनेक वृक्षों में पाया जाता है।

चीड़ (Pine) प्रजाति के कई वृक्षों में कीड़ों या कवक के आक्रमण होने या घाव हो जाने के स्थान पर रेज़िन का असामान्य प्रवाह होने लगता है। रेज़िन, रेज़िन अम्लों का वाष्पशील टर्पीन द्रवों में घोल है। ये सब रसायन संभवतः काष्ठ को नष्ट करने वाले कवक के लिए हानिकारक हैं। यह भी समझा जाता है कि रेज़िन भौतिक रूप से कवक के बढ़ने तथा कीड़ों के आक्रमण के लिए विरोध पैदा करता है। रेज़िन एक जलनिरोधी (waterproof) पदार्थ है जबकि कवक को वृद्धि के लिए जल की आवश्यकता होती है।

अधिकांश वृक्षों में sapwood के आवरण के भीतर का मध्य भाग गहरे रंग का निर्जीव heartwood होता है। सजीव sapwood के निर्जीव heartwood में परिवर्तन होना प्रकृति की एक असाधारण क्रिया है क्योंकि यह वृक्ष के लिए उपयोगी होती है। यह निर्जीव भीतरी मध्य भाग वृक्ष के लिए केवल सहारे (support) का काम करता है क्योंकि इसमें असामान्य दृढ़ता होती है। वृक्ष को अतिरिक्त लाभ यह है कि इतने बड़े निर्जीव स्तंभ के लिए इसे ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती। यह स्तंभ जो पौधों के लिए इतना उपयोगी है, संक्रमण (infection) से सजीव रूप से नहीं लड़ सकता, इसलिए पौधों ने यह व्यवस्था अपना ली है कि heartwood सफलतापूर्वक संक्रमण से निबट सके। यह वृक्षों की सुरक्षा की तीसरी पंक्ति है।

जब heartwood का निर्माण होता है, उस समय इसमें कई रसायनों का समावेश हो जाता है जो इसकी रक्षा करते हैं। इस बात की पुष्टि अनेक अध्ययनों से हुई है। चिरस्थायी (durable) heartwood से प्राप्त निष्कर्षण (extract) उसी वृक्ष के sapwood से प्राप्त निष्कर्षण से अधिक कवकनाशक गुण रखते हैं। अचिरस्थाई (nondurable) heartwood के निष्कर्षण में कवकनाशक द्रव्य नहीं होते। यदि durable heartwood के इन द्रव्यों को घोलकों (solvent) द्वारा निकाल लिया जाए तो काष्ठ की स्वाभाविक अवरोधक शक्ति क्षीण हो जाती है। कई कवकनाशक द्रव्य लिग्निन के साथ रासायनिक बंध बना लेते हैं, इन्हें साधारण घोलक द्रवों से निष्कर्षित नहीं किया जा सकता।

Heartwood में पाए जाने वाले प्रतिसूक्ष्मजीवी (antimicrobial) पदार्थ अधिकतर फीनॉल (phenol) तथा टर्पीन वर्गों के होते हैं। क्यूप्रेसिऐसी (Cupressaceae) प्रजाति के वृक्षों का heartwood सबसे तीव्र कवकरोधी होता है और इसका कारण उसमें उपस्थित ट्रोपोलोन (tropolone) वर्ग के पदार्थ होते हैं जो सक्रिय कवकरोधी पदार्थ हैं। Lebocedrus प्रजाति के वृक्षों के heartwood में कवकनाशक फीनॉलिक पदार्थ होते हैं। पैराटिकॉमा (Paratecoma) प्रजाति के वृक्षों के heartwood से नैफ्थोपाइरन (naphthopyran) प्राप्त किए गए हैं जो कवकनाशक गुणों में ट्रोपोलोन के समकक्ष रखे जा सकते हैं। यह समझा जाता है कि फीनॉलों से संबंधित टैनिन फंगस के एंज़ाइमों से संयोग कर उन्हें निष्क्रिय कर देते हैं। सेलुलेज़ (cellulase), ज़ाइलनेज़ (xylanase) तथा पेक्टिनेज़ (pectinase) क्रमशः काष्ठ के सेलुलोस, ज़ाइलन तथा पेक्टिन को नष्ट करने वाले एंज़ाइम हैं। इन सबमें -SH समूह होता है जो पिनोसिल्विन तथा अन्य स्टिलबीन (stilbene) से संयोग कर निष्क्रिय हो जाते हैं।

कहना न होगा कि heartwood कितना चिरस्थाई होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें कौन सा रसायन विद्यमान हैं, वह रासायनिक रूप से कितने स्थायी (stable) हैं तथा सूक्ष्माणुओं द्वारा निष्क्रिय न होने की उनमें कितनी क्षमता है। कई वृक्षों के heartwood में अनेक कवकरोधी पदार्थ होते हैं जिनकी सक्रियता परस्पर योगवाही (synergistic) प्रभाव के कारण होती है। दक्षिण-पूर्वी ऑस्ट्रेलिया तथा पूर्वी अमेरिका के जानवरों के कुछ बाड़ों में सौ वर्ष पुराने लकड़ी के खंभे आज भी मौजूद हैं। भारतवर्ष के कई प्राचीन मंदिरों तथा भवनों में प्रयुक्त लकड़ी की मूर्तियां तथा द्वार आज भी उतने ही आकर्षक हैं। ये सब काष्ठ आज के परिरक्षकों (preservatives) द्वारा उपचार किए गए काष्ठों से किसी भी तरह कम नहीं हैं।

आपने बहुत से ऐसे वृक्षों को देखा होगा जो अंदर से खोखले हो जाते हैं, ऐसे वृक्षों को लेकर जनसाधारण में प्रायः कई किंवदन्तियों और कथाओं की कल्पना कर ली जाती है। यहां प्रश्न यह उठता है कि यदि heartwood इतना सशक्त होता है तो वह कैसे नष्ट हो जाता है? यदि पौधों के तनों में उन पदार्थों का मापन किया जाए जो घोलक द्रवों के द्वारा निष्कर्षित (extract) किए जा सकते हैं तथा फंगसरोधी होते हैं तो यह पाएंगे कि heart-wood के बाहरी भाग में इनकी मात्रा सबसे अधिक होती है जिससे कि sapwood से होकर अंदर प्रवेश करने वाले संक्रमण का जमकर



चित्र 9.6 अंदर से खोखला होता वृक्ष।

मुकाबला किया जा सके। ज्यों-ज्यों हम केंद्र की ओर जाते हैं, इसकी मात्रा कम होती जाती है। इसलिए यदि किसी प्रकार heartwood के केंद्र में संक्रमण हो जाए तो वह इसका कड़ा प्रतिरोध न कर सकने के कारण शीघ्र नष्ट हो जाएगा। फलस्वरूप वृक्ष अंदर से खोखले हो जाते हैं (चित्र 9.6)।

वृक्षों में कीटनाशक पदार्थ केवल तनों में निहित हों यह बात नहीं। यह छाल और काष्ठ के अतिरिक्त पत्तियों, फलों तथा अन्य भागों में भी जाए जाते हैं। नीम की पत्तियां अपने कीटनाशक गुणों के कारण अनाज, वस्त्र तथा अन्यान्य पदार्थों को कीड़ों से बचाने के लिए सर्वत्र उपयोग में लाई जाती हैं। नीम (Azadirachta indica) में उपस्थित एज़ाडिरेक्टिन (azadirachtin) अनेक कीड़ों के लिए अत्यंत प्रभावशाली एन्टीफीडेन्ट (antifeedant) है। साथ ही यह मनुष्य तथा अन्य जानवरों के लिए पूर्ण रूप से निरापद और जैवनिम्नीकरणीय (biodegradable) पदार्थ है।

पौधे और खनिज : कितना गहरा संबंध

पौधों को आवश्यकता तो केवल 10 तत्वों की है, (C, H, O, N, P, S, K, Ca, Mg, Fe) और सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता के क्रम में पांच और तत्व आते हैं, B, Mn, Cu, Zn तथा Mo, परंतु ये जड़ों के मार्ग से पृथ्वी से अनेक अन्य खनिज पदार्थों को भी ग्रहण करते हैं। आश्चर्य तो यह होता है कि सोडियम, एलुमीनियम तथा सिलिकन, तीन सर्वाधिक पाए जाने वाले तत्वों की पौधों को आवश्यकता नहीं होती। Mg क्लोरोफिल का अंग है तथा Zn, Mn, Co तथा Fe की आवश्यकता अनेक एंज़ाइमों को होती है।

कुछ पौधों की यह विशेषता है कि वह कई धातुओं को अपने अंदर जमा कर लेते हैं। ऐसी दशा में पौधों में धातु विशेष की मात्रा, भूमि में पाई जाने वाली धातु की मात्रा से अधिक हो जाती है। इस आधार पर भूमि में धातुओं के अयस्कों के होने का अनुमान लगाया जाता है। ऐसे पौधों को सूचक (indicator) पौधे कहते हैं। विश्व के कई देशों में, विशेष रूप से रूस में, सूचक (indicator) पौधों का उपयोग धातुओं की खोज करने के लिए किया जाता रहा है। सारणी 9.1 में कुछ ऐसे पौधों का संकलन किया गया है।

सारणी 9.1 - सूचक (Indicator) पौधे

पौधे	देश	धातु
Viscaria alpina	नॉर्वे	तांबा
Silene cobalticola	कटंगा (Southern Congo)	कोबाल्ट
Alyssum bertolonii	इटली	निकिल
Eriogonum ovalifolia	मोन्टाना (यू.एस.ए.)	चांदी
Pulsatilla patens	रूस	निकिल
Alyssum murale	रूस	निकिल
Elsholtzis haichowensis	चीन	तांबा
Astragalus प्रजाति के कई पौधे	अनेक देश	सेलीनियम

कई पौधे ऐसे भी होते हैं जिनमें कुछ धातुओं की उपस्थिति में विशेष आकारिकीय (morphological) परिवर्तन आ जाते हैं। इन परिवर्तनों के आधार पर भी धातुओं की उपस्थिति की सूचना मिलती है। इस दिशा में मिट्टी में सेलीनियम तथा सूचक (indicator) पौधों के परस्पर संबंध के विषय में विशेष अन्वेषण किए गए हैं। यह पाया गया कि यदि Astragalus pectinatus को उस भूमि में उगाया जाए जहां सेलीनियम की मात्रा 2.4 ppm (parts per million) है, पौधों में सेलीनियम की मात्रा 4000 ppm तक पहुंच गई। यह पौधे द्वारा सेलीनियम का संचय करने के कारण ही संभव है। यह पाया गया कि ये पौधे कई सेलीनियम युक्त ऐमीनो अम्लों का संश्लेषण करते हैं जिनमें मुख्य हैं, $CH_3\text{-}Se\text{-}CH_2\text{-}CH<^{NH_2}_{COOH}$,

$(CH_3)_2\overset{\oplus}{Se}\text{-}CH_2\text{-}CH<^{NH_2}_{COOH}$, $^{HOOC}_{H_2N}>CH\text{-}CH_2\text{-}Se\text{-}CH_2\text{-}CH_2\text{-}CH<^{NH_2}_{COOH}$

कुछ पौधे तो ऐसे भी हैं जिन्हें वृद्धि के लिए सेलीनियम आवश्यक हो जाता है। Astragalus racemosus पौधे से सेलीनियम पदार्थों की दुर्गन्ध आती है जो वाष्पशील $CH_3\text{-}Se\text{-}Se\text{-}CH_3$ के कारण है। जीवधारियों के लिए भी अत्यंत न्यून मात्रा में सेलीनियम एक आवश्यक पदार्थ माना गया है।

आर्सेनिक प्राचीन काल से जाना माना एक अत्यंत विषैला तत्व है परंतु इसे अनेक औषधियों तथा तांबे के आर्सेनेट (copper arsenate) के रूप में लकड़ी के संरक्षण के लिये उपयोग

किया जाता रहा है। स्पष्ट है कि आर्सेनिक युक्त पदार्थ बनाने वाले कारखानों के आस-पास की भूमि बहुत दूषित हो जायेगी जो भूमिगत जल को भी दूषित कर सकती है। कई स्थानों में धरती के भीतर प्राकृतिक रूप से ही पर्याप्त आर्सेनिक पाया जाता है। पिछले वर्ष विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) के अध्ययन के अनुसार बांग्लादेश के 7.7 करोड़ निवासी आर्सेनिक के विषाक्त जल का उपयोग कर रहे हैं। भारत में भी पश्चिमी बंगाल के कुछ भागों का भूमिगत जल इसी प्रकार का है। दीर्घकाल तक आर्सेनिक युक्त जल पीने से त्वचा, फेफड़ों तथा मूत्राशय के कैंसर होने की संभावना रहती है। जनवरी 2001 में 'नेचर' में प्रकाशित एक विवरण के अनुसार गेन्सविल फ्लोरिडा स्थित विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने अनजाने में ही यह पाया कि एक पुराने कारखाने की भूमि में, जहां काष्ठ के संरक्षण के लिये कॉपर आर्सेनेट प्रयुक्त किया जाता था, चीनी ब्रेक फर्न (Chinese Brake Fern, Pteris vittata) खूब लहलहा रहा था। परीक्षण से ज्ञात हुआ कि फर्न के प्रपर्णों (fronds) में अत्यधिक मात्रा में आर्सेनिक जमा हो गया था जो भूमि में उपस्थित आर्सेनिक के अनुपात से 200 गुना अधिक था। एक किलोग्राम फर्न के पौधों ने दो ग्राम आर्सेनिक समेट लिया था। जब प्रयोगशाला में यह प्रयोग दोहराये गये तो एक किलोग्राम फर्न ने आठ ग्राम तक आर्सेनिक आत्मसात कर लिया। अब वैज्ञानिक सोच रहे हैं कि क्या इस फर्न को आर्सेनिक युक्त जल में उगाकर आर्सेनिक को सोखा जा सकता है या इस पौधे के आर्सेनिकप्रिय जीन (gene) को अन्य पौधों में प्रतिस्थापित कर इनसे जल को विषमुक्त बनाया जा सकता है। यह phytoremediation विधि कहलाती है।

अनेक पौधे अपने अंदर एलुमीनियम संग्रह कर लेते हैं। Hydrangea macrophylla एलुमीनियम की उपस्थिति में नीले फूल देते हैं जबकि इसके अभाव में लाल या गुलाबी फूल प्राप्त होते हैं। चाय के पौधों में भी एलुमीनियम का संग्रह करने का गुण होता है।

धातुओं को पौधों की सहायता से पृथ्वी से खींच लेने की तकनीक को बायोमाइनिंग (biomining) कहते हैं। न्यूज़ीलैंड के एक वैज्ञानिक ने यह दावा किया है कि सोने की खानों की बची-खुची मिट्टी में अल्प मात्रा में जो सोना होता है, उसे गोभी, बंदगोभी, मूली इत्यादि के पौधे पृथ्वी से जड़ों द्वारा खींच सकते हैं, यदि भूमि को विशेष रसायनों द्वारा सींचा जाए। तत्पश्चात् पौधों को जला कर सोना प्राप्त किया जा सकता है।

आयोडीन एक अन्य असामान्य तत्व है जिसका संग्रह करने वाले कई पौधों की खोज हुई है। समुद्र के जल में आयोडीन की मात्रा केवल 50 माइक्रोग्राम प्रति किलोग्राम होती है। परंतु

Laminaria digitata नामक घास अपने सूखे भार के 1% आयोडीन का संचय कर लेती है, जो जल की तुलना में 30,000 गुना अधिक है। पौधों में आयोडीन, मोनो तथा डाइआयडोटाइरोसीन के रूप में संचित होती है। Rhodymenia palmata में ट्राइआयडोथाइरोनिन भी पाई जाती है। कहना न होगा कि हमारे शरीर में भी थाइरॉइड (thyroid) ग्रंथि आयोडीन को इन्हीं रूपों में संचित कर थाइरॉक्सिन (thyroxin) नामक हॉर्मोन का निर्माण करती है।

कैडमियम जीवधारियों तथा पौधों के लिए एक विषैली धातु है और पर्यावरण में इसकी उपस्थिति अत्यंत हानिकारक है। उस स्थान में जहां कैडमियम हो, अनेक पौधों ने अपने भीतर उस क्षमता का विकास कर लिया है जो कैडमियम (Cd^{++}) को बांध कर अपने सेलों के रसधानियों (vacuoles) में जमा कर लेते हैं। इस काम के लिए ये पौधे अनेक छोटे-छोटे पेप्टाइडों (peptides) का निर्माण करने में समर्थ हैं जो Cd^{++} से बंध बना लेते हैं। इन्हें फाइटोकीलेटिन (phytochelatins) कहते हैं। फाइटोकीलेटिन कई अन्य भारी धातुओं (heavy metals) को भी इसी प्रकार जमा करके निष्क्रिय कर देते हैं। इस आधार पर कई पौधों की खोज जारी है जिनका उपयोग धातुओं से उत्पन्न प्रदूषण को आंकने या वातावरण में उपस्थित भारी धातुओं को हटाने में किया जा सके।

जलकुंभी (Water hyacinth) वह पौधा है जो तालाबों की सतह में बहुत तेज़ी से बढ़ता है। इसमें कई प्रदूषकों को अपने अंदर समेट लेने की क्षमता है। दुर्भाग्यवश इस गुण को प्रदूषकों से मुक्ति पाने के लिए उपयोग में नहीं लाया जा सकता, क्योंकि जलकुंभी के कई अपने दोष भी हैं।

वैसे तो पौधे जड़ों द्वारा साधारणतः जल एवं खनिज पदार्थों को ही ग्रहण करते हैं, परंतु पृथ्वी में उपस्थित कई विशेष अप्राकृतिक कार्बनिक पदार्थ भी जड़ों द्वारा लिए जा सकते हैं। कई फंजाईनाशक पदार्थ तथा डी.डी.टी., फाइटोप्लेंकटन (phytoplankton) के माध्यम से जीवधारियों के शरीर में पहुंच कर संचित हो जाते हैं और उनके लिए घातक हो सकते हैं।

पौधे : औषधियों के अमूल्य भंडार

मनीषियों ने कई हज़ार वर्ष पूर्व ही यह समझ लिया था कि स्वस्थ शरीर के द्वारा ही मनुष्य जीवन में अपने लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है। महर्षि चरक ने 'चरक संहिता' के प्रारंभ में

ही लिखा 'धर्मार्थ काम मोक्षाणाम आरोग्यं मूलमुत्तमम्' अर्थात् स्वास्थ्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए उत्तम साधन है। महाकवि कालिदास ने 'कुमारसंभवम्' में लिखा, 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'। शरीर ही मूल रूप से धर्म का साधन है। इसलिए मनीषियों ने अनादि काल से स्वस्थ शरीर के लिए सभी उपलब्ध पदार्थों पर अन्वेषण किए तथा इसको आयुर्विज्ञान के रूप में संकलित किया। भर्तृहरि ने कहा है 'नास्ति मूलमनौषधम्'। अर्थात् किसी वृक्ष की जड़ ऐसी नहीं जो औषधि न हो, परंतु इससे यह न समझना चाहिए कि औषधियां केवल जड़ों में ही निहित हैं। औषधीय गुणों से युक्त रासायनिक पदार्थ वृक्षों के लगभग सभी अंगों से प्राप्त किए गए हैं। पौधों से उपलब्ध ऐसे हज़ारों रसायन हैं जो या तो विशुद्ध रूप में आज औषधियों में उपयोग किए जा रहे हैं या फिर वृक्षों के अंगों से बनाए गए चूर्ण, टिकिया, निष्कर्षण या अन्य प्रकार से मिश्रण के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। इन मिश्रणों का अपना महत्व है क्योंकि यह समझा जाता है कि इनमें उपस्थित द्रव्य योगवाही (synergistic) रूप से रोग के कारणों को नष्ट करने में एक दूसरे की सहायता करते हैं। आयुर्वेदीय पद्धति इसी सिद्धांत पर काम करती है।

अधिकांश संश्लेषित औषधियों का निर्माण भी पौधों से प्राप्त उन पदार्थों के आधार पर ही होता है जो औषधीय गुण रखते हैं। कभी-कभी यह पदार्थ अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में पाए जाते हैं या ऐसे पेड़-पौधे आसानी से उपलब्ध नहीं होते या उनकी संख्या बहुत कम होती है। ऐसी स्थिति में रसायनज्ञों का प्रयास यह होता है कि उन पदार्थों को प्रयोगशाला में संश्लेषण द्वारा प्राप्त किया जा सके। यदि यह कार्य अत्यंत कठिन हो तो उन रसायनों से मिलते-जुलते पदार्थों का निर्माण किया जाता है जिनका संश्लेषण अधिक कठिन न हो और जिनमें औषधीय गुण विद्यमान हों तथा रोगी के लिए विषैले प्रभाव कम या बिल्कुल न हों। इसके उपरांत उन पदार्थों को औषधीय गुणवत्ता के लिए परखा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी औषधि की खोज के लिए परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से वनस्पति मूल के औषधीय पदार्थ ही प्रेरणा के स्रोत रहे हैं।

वनस्पति मूल के हज़ारों औषधीय पदार्थ प्रायः सभी रासायनिक वर्गों में से आते हैं। निम्न विवरण में पदार्थों को उनके वर्ग के क्रम में रखा गया है और हर वर्ग से केवल कुछ प्रतिनिधि स्वरूप उदाहरणों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

ऐल्केलॉइड्स (Alkaloids) – सभी ऐल्केलॉइड शारीरिक क्रियाशीलता (physiological activity) से युक्त होते हैं। औषधि के रूप में प्रयोग किए जाने वाले अनेक ऐल्केलॉइडों की संक्षिप्त चर्चा 'वनस्पतियों के विषैले पदार्थ' के अंतर्गत की जा चुकी है (पृष्ठ 91)। कुछ अतिरिक्त उदाहरण निम्न हैं -

बर्बेरीन (Berberine), बर्बेरिस ऐसिआटिका (Berberis asiatica) तथा इस प्रजाति के अन्य कई पौधों से प्राप्त होता है। यह बैसिलरी अतिसार (bacillary dysentery) के उपचार के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसमें बैक्टीरियानाशक गुण होते हैं तथा आंतों के द्वारा इसका बहुत कम शोषण होता है।

एफेड्रीन (Ephedrine) तथा इसके व्युत्पाद इफेड्रा प्रजाति के पौधों में पाए जाते हैं। अधिकतर एफेड्रीन अब रासायनिक संश्लेषण द्वारा प्राप्त होती है। यह bronchodilator पदार्थ है और इसका उपयोग खांसी तथा दमा के उपचार के लिए किया जाता है।

कैम्प्टोथेसिन (Camptothecin) तथा हैरिंगोनिन (Harringonine) क्रमशः Camptotheca acuminata तथा Cephalotaxus प्रजाति के पौधों से प्राप्त किए गए हैं तथा अपने ट्यूमर विरोधी गुणों के लिए जाने जाते हैं।

क्विनोनॉइड (Quinonoids) — लैपेकोल (Lapachol), Tabebuia प्रजाति के अनेक पौधों तथा Stereospermum suaveolens से यह रसायन प्राप्त किया गया है जो नेफ्थेक्विनोन का व्युत्पाद है। इसमें ट्यूमर विरोधी गुण होते हैं।

सेनोसाइड्स (Sennosides), Cassia augustifolia नामक वृक्ष से प्राप्त laxative, एन्थ्रेक्विनोन समूह का पदार्थ है।

लिग्नन (Lignan) — Magnolol, honokinol, phyllanthoside तथा इस वर्ग के अनेक अन्य पदार्थों में तीव्र शारीरिक सक्रियता होती है। पहले दो पदार्थ मैग्नोलिया ग्रेन्डीफ्लोरा से प्राप्त किए गए हैं तथा इनमें बैक्टीरियानाशक और कवकनाशक (antibacterial तथा antifungal) गुण होते हैं। तीसरा पदार्थ फाइलैन्थस (Phyllanthus) प्रजाति के कई पौधों से प्राप्त हुआ है। इसमें ट्यूमर विरोधी (antitumor) गुण विद्यमान हैं।

टर्पीन्स (Terpenes) — Jatrophone (Jatropa gossypifolia से प्राप्त पदार्थ) में ट्यूमर विरोधी गुण होते हैं।

Ginkgolide चीनी मूल के पौधे Ginkgo से प्राप्त डाइटर्पीन है। यह दमा, Alzheimer रोग तथा अन्य रोगों में उपयोगी सिद्ध हुआ है।

Taxol, Taxus baccata से प्राप्त रसायन आज कैंसर की सर्वमान्य औषधि है। सैन्टोनिन (Santonin), चंदन के तेल से प्राप्त सेसक्यूटर्पीन (sesquiterpene) है जो कृमिनाशक के रूप में एक उपयोगी रसायन है।

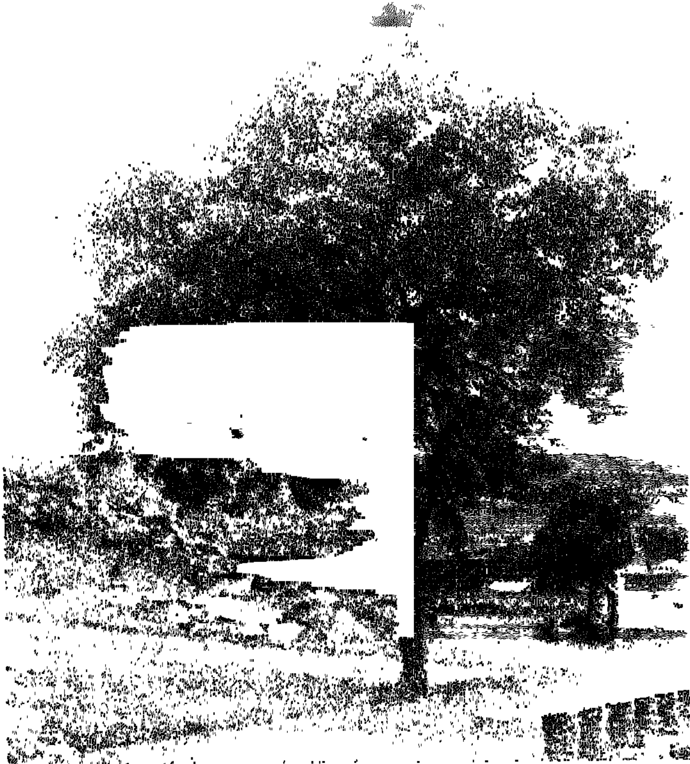
संश्लेषित कीटनाशक पदार्थों से होने वाली हानियां आज सर्वविदित हैं। इसलिए मनुष्य एक बार फिर चिरपरिचित वृक्षों की शरण में आया है। अपने कीटनाशक गुणों के लिए नीम का वृक्ष भारत वर्ष में अनादि काल से प्रयोग किया जाता रहा है। अनुसंधानों के आधार पर नीम से प्राप्त होने वाले कीटनाशक पदार्थ आदर्श कीटनाशक सिद्ध हुए हैं। यह अत्यंत न्यून मात्रा में अनेक प्रजातियों के कीड़ों के लिए घातक होता है। मनुष्य तथा अन्य जानवरों को इससे किसी प्रकार की क्षति नहीं होती। इससे पर्यावरण दूषित नहीं होता। नीम के फलों में कीटनाशक पदार्थों की मात्रा सबसे अधिक होती है, इसलिए प्रतिवर्ष बिना वृक्षों को क्षति पहुंचाए यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं। (मनुष्य, प्रकृति का सर्वप्रमुख दोहक भी पेड़ों की रक्षा करेगा, कुछ नहीं तो केवल फलों को प्राप्त करने के लिए।) भारत के मैदानी भागों में नीम के वृक्षों को उगने के लिए किन्हीं विशेष गुणों वाली भूमि की आवश्यकता नहीं होती (चित्र 9.7)।

Glycyrrhizin, Glycyrrhiza glabra (licorice, गुलकन्द) से प्राप्त एक मीठा पदार्थ है जिसका उपयोग शक्कर के स्थान पर तथा एडीशन रोग (Addition's disease) के उपचार के लिए किया जाता है। Picrotoxin, Menispermum cocculus के फलों से प्राप्त किया गया है। यह एक शक्तिवर्द्धक औषधि (analeptic) है। Tetrahydrocannabinol, Cannabis sativa (भांग, हशीश) के पौधे से प्राप्त एक पदार्थ है, जिसकी रचना के एक भाग का सृजन पौधे एक टर्पीन से करते हैं। यह पदार्थ प्रतिवमनकारी (antiemetic) है तथा आंख के दबाव को कम करता है।

स्टेरॉयड्स (Steroids)— ऐपोसाइनेसी (Apocynaceae), लिलिएसी (Liliaceae), मोरेसी (Moraceae) तथा अन्य कई जातियों के पौधों में स्टेरॉयड समूह के कुछ ऐसे ग्लाइकोसाइड (शर्कराओं के यौगिक) पदार्थ पाए जाते हैं जिनका हृदय की मांसपेशियों पर तीव्र प्रभाव पड़ता है। ये हृदीय ग्लाइकोसाइड (cardiac glycoside) पौधों की जड़ों तथा तनों

की छाल एवं अन्य भागों में भी पाए जाते हैं। Digitalis प्रजाति के पौधों में digitoxigenin तथा इसी समूह के अन्य पदार्थ पाए गए हैं जिन्हें कार्डियोटॉनिक (cardiotonic) के रूप में उपयोग किया जाता है।

चित्र 9.7 आदर्श कीटनाशक पदार्थों का सृष्टा नीम (Azadirachta indica) अपनी बाल्यावस्था में।



विविध पदार्थ — Circumin, हल्दी की जड़ों से प्राप्त एक डाइएराइलहैप्टेनॉइड (diarylhaptanoid) है जिसमें दो बेंजीन वलय सात कार्बन की एक शृंखला से जुड़े हैं। हल्दी अपने अनेक औषधीय गुणों के कारण भारत के घर-घर में जानी जाती है।

रोटीनोन (Rotenone), डैरिस (Derris) पौधे की जड़ों से प्राप्त पदार्थ है और दीर्घ काल से मछलियों को मार कर पकड़ने तथा कीटनाशक पदार्थ के रूप में प्रयोग किया जाता है।

सैलिसिन (Salicin), सैलिक्स (Salix) जाति के वृक्षों की छाल से प्राप्त होता है जो सैलिसिल ऐल्कोहॉल (salicyl alcohol) का ग्लूकोसाइड है। सैलिसिन एक सुपरिचित पीड़ाहारी पदार्थ है।

ऐस्क्युलेटिन (Aesculetin) एक हाइड्रॉक्सीकूमैरिन (hydroxycoumarin) है। यह रूटा पिनाटा (Ruta pinnata) नामक वृक्ष की छाल से प्राप्त पदार्थ अतिसार की औषधि है।

पाइरेथ्रिन (Pyrethrin), गुलदाउदी (Chrysanthemum) के फूलों से प्राप्त किया गया है और एक कीटनाशक द्रव्य है। यह उष्ण रक्त वाले जीवों के लिए घातक नहीं होता।

कैफीन (Caffeine), कॉफी में पाया जाने वाला एक रासायनिक पदार्थ है जिसे Theobroma cocoa तथा Coffea arabica वृक्ष के बीजों से प्राप्त किया जाता है। कैफीन केंद्रीय स्नायुतंत्र (central nervous system, सी.एन.एस.) को उत्तेजित करता है।

पौधे केवल औषधियों के स्रोत या वातावरण के शोधक हों यह बात नहीं। ये वातावरण के प्रदूषक तथा मनुष्यों एवं पशुओं में रोगों को जन्म देने वाले रसायनों के निर्माता भी हैं। सच तो यह है कि चाहे पौधे हों या जीवधारी, इनका हर क्रियाकलाप प्रदूषण उत्पन्न करता है। इसे हम एलीलोपैथी के अंतर्गत देख ही चुके हैं (पृष्ठ 95)। कई पौधों के परागकण तथा वाष्पशील पदार्थ मनुष्य में ऐलर्जी (allergy) पैदा करते हैं। लकड़ी उद्योगों (saw mills) में काम करने वाले लोग लकड़ी के चूर्ण के संपर्क में दीर्घकाल तक रहने पर अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। पौधे अनेक विषैले पदार्थ बनाते हैं (पृष्ठ 91-93)। पौधों में कई ऐसे पदार्थ हैं जिनका संबंध ट्यूमर तथा कैंसर से जोड़ा गया है। इनमें अनेक टैनिन, ऐल्डिहाइड, सैफ्रोल (safrole), क्रिसेरोबिन (chrysarobin) इत्यादि पदार्थ शामिल हैं। दूसरी ओर कुछ टैनिन ऐसे भी हैं जिनमें ट्यूमर विरोधी (antitumor) गुण मौजूद हैं।

यह प्रतीत होता है कि अभी तो मनुष्य वनस्पतियों से उपलब्ध रसायनों में से गिने-चुने पदार्थों को ही परख पाया है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पौधों में मनुष्य के

लिए औषधीय रसायनों का असीम भंडार भरा हुआ है। आज प्रयोगशाला में संश्लेषित औषधियों के अनेक दुष्प्रभावों से आहत होकर और इस विचार से कि जैविक मूल के पदार्थ जीवधारियों के लिए अधिक सुपाच्य और अनुकूल होंगे, मनुष्य फिर पौधों की प्रयोगशाला की ओर आकृष्ट हुआ है।

वृक्ष न केवल हमें वह दुर्लभ रसायन दे सकते हैं जिनका संबंध हमारे स्वास्थ्य और सुरक्षा से है तथा हम अपनी प्रयोगशाला में आसानी से उनका निर्माण करने में असमर्थ हैं, वह हमें उन रसायनों को भी सुलभ कराते हैं जिनका उपयोग कर हम उन्हें अधिक उपयोगी रसायनों में बदल सकें। यह अर्द्ध संश्लेषण (semisynthesis) है जिसे हम वनस्पति तथा मनुष्य की प्रयोगशालाओं का संयुक्त प्रयास कह सकते हैं। सबसे बड़ा सत्य यह है कि वनस्पति जगत ही पृथ्वी पर मुख्य उपयोगी पदार्थों का वह स्रोत है जिसका नवीनीकरण संभव है।

यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि अनेक असाध्य रोगों के लिए यदि कहीं सही औषधियों की संभावना है तो वह वनस्पति जगत ही है। इसलिए आज लुप्त होती हुई वनस्पतियों की सुरक्षा एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय बन चुका है।

